



# भारतभूमि और उसके निवासी

अथवा

भारतीय इतिहास का भौगोलिक आधार

लेखक

श्री जयचन्द्र विद्यालंकार

संस्कृत अध्यापक, मुद्रकाल कालिका,

जोश्या महाराज कालिका

दिल्ली

द्वारा परिचालित संस्करण

द्वितीय भारतीय ऑरियंटल कॉन्फ़रेंस के सभापति

रायबहादुर श्री हीरालाल

लिखित प्रस्तावना सहित ।

अदिलद  
२१

स्वाश्रम, आगरा

सं० १९२७ वि०

अदिलद  
२१

प्रकाशक  
जयचन्द्र विद्यालंकार  
कमालिया, पंजाब ।

प्रिण्टर  
पं० चन्द्रहंस शर्मा विशारद  
रत्नाश्रम क्राइम चार्ड्स प्रिंटिंग वर्क  
आगरा ।





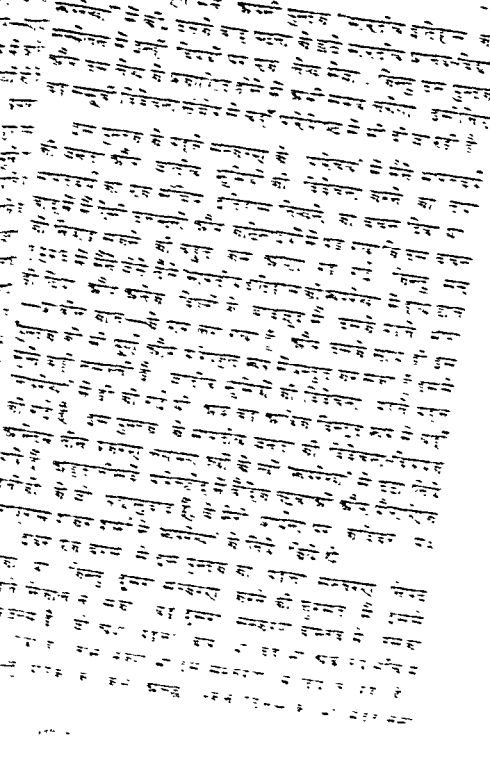
## परिचय

“भारतीय इतिहास का भौगोलिक आधार” पहले पहल सन् १९२१ वि० ( १९२५ ई० ) में लिखा गया, और १९२२ के शुरू में दुनिया के मामले आया था। उस का परिचय देते हुए मैंने तब कहा था कि वह भारतीय इतिहास के भूमिका-रूप भारतवर्ष के वर्णन और विवेचन के दो खण्डों में से एक है। प्रस्तुत पुस्तक के केवल पहले खण्ड का विषय उम में आया था। दूसरा खण्ड तब न लिखा गया था। अब मैं इसे “भारतभूमि और उस के निवासी अथवा भारतीय इतिहास की परिस्थिति” कहना पसन्द करता, पर इस का पुराना नाम प्रसिद्ध हो चुका है— यह इसी से प्रकट है कि ऐसी पुस्तक का हिन्दी में दूसरा संस्करण हो रहा है—, और इसीलिए उस नाम को भी बनाये रखना जरूरी है।

भौगोलिक विवेचना की तरफ अभी तक हमारे देश में बहुत कम ध्यान दिया जाता है। इतिहास की अनेक प्रवृत्तियों को भौगोलिक परिस्थिति ने किस प्रकार निश्चित किया है इस का अनुभव यदि यह पुस्तक करा सके तो मेरा जतन एक बड़े अंश में सफल हो जायगा।

भारतवर्ष की जातीय भूमियों को पहचानने का महत्त्व पहले पहल मैंने सन् १९७२ ( सन् १९०१ ई० ) के स्मरणीय साल दिखलाया था। उनकी पहचान जहाँ एक तरफ भारतीय इतिहास और समाजशास्त्र के अध्ययन की बुनियाद है वहाँ भारतीय राष्ट्र के भावा जीवन की भी वही इकाइयाँ हैं। इन हास-समाजशास्त्र के अन्वेषकों के लिए उन का जितना महत्त्व







होगी। मैंने सब जगह भारत सरकार को "इण्डिया ऐन मेन्टेनेमेंट कन्टीक्ट" (भारत और पड़ोसी देश) परम्परा के अर्थ में एशिया भीरीड (दक्खिन एशिया परम्परा) के नये संस्करण के नक्शों में काम लिया है। कोकुर्युं फर्डे, ममेडके, अकमका तोकिरो द्वारा प्रकाशित 'मध्य एशिया की पेटलस' की मैंने बहुत प्रशंसा सुनी है, किन्तु अनेक जतन करने पर भी मैं आज तक उसे नहीं पा सका। तीन घण्टा हुए मेजर वामनशाम बसु ने मुझ से कहा था कि उन्होंने अदूरदर्शी में भारतवर्ष का एक व्यावसायिक भूगोल (इन्डियन ज्योग्राफी और इण्डिया) लिखा है। सपने के रूप में ही बात थी पर अब तक मैंने उसे खरा नहीं देखा। यदि मेजर बसु की अकाल मृत्यु न हो जाती तो शायद मैं उनकी दम्भलिखित प्रति से भी लाभ उठा पाता। म. टी. म. हांन्डिक के इन्स्टीट्यूट ऑफ इण्डिया (गुडिरा विरय कोण) २३ नें संस्करण में प्रकाशित सेन्सों में भी मैं सहायता ली है। किन्तु जहाँ उनका भारत और पड़ोसी देश नक्शों में अन्त था वहाँ उनकी बात मैंने आकार नहीं की और जिन स्थानों का उपयोग किया गया है, उनका निर्देश जगह जगह कर दिया गया है। किन्तु एतिहासिक घटनाओं के सम्बन्ध में सप्रय केवल उन्हीं के लिए प्रमाण निर्देश दिए गए हैं जो प्रसिद्ध या सर्वसम्मत नहीं हैं।

यह कह देना जरूरी है कि मैंने जालीय भूमियों विषय अन्वयन अभी तक पूरा नहीं हो पाया। विरोध कर रहे प्रदेशों के अर्थ-संशोधन देवता बाकी है। अन्वयन परिमित मात्रा में करने में अर्थ-संशोधन विषयों को पूरा नहीं कर सका।

मैंने 'एन एन एन एन' और निर्वो ने मुझे इस पुस्तक को देना न कहकर कहा था। सहायता से ही उनका क्या





Handwritten musical notation on a page, featuring a complex system of rhythmic notation and a large, dense block of text. The notation consists of vertical stems with various flags and beams, and the text is written in a cursive script. The page is oriented vertically, with the notation and text running from top to bottom.



(Anthropometry) पर अनेक विद्वान् विश्वास करने को भिन्नकते हैं। खोपड़ी की लम्बाई चौड़ाई द्वारा अथवा नाक की नाप आदि से परख करना कि अनुक पुरुष किसी विशेष जाति या वर्ग का है विरोधी पक्ष को हान्यजनक जान पड़ता है। उनके लेखे तकिया या दाई द्वारा मननानो विकृतियाँ पैदा हो सकती हैं। खोपड़ी या नाक की आकृति जिन प्रकार दाई बना कर या ठाकर कर देवे उसी प्रकार की हो जाती है, और सिर का आकार उसके नीचे तकिया रखने से भी बदल जाता है। तिस पर भी एक वेपभूषा और रंग के भिन्नजातीय व्यक्तियों को देखते ही पहचान की जा सकना है, यथा यदि श्यामल रंग के कोट-पतलून-हैट-बूट-धारी मराठा और बंगाली किसी के सामने खड़े कर दिये जाय तो वह उतनांग की आकृति देखते ही बतला देगा कि समुक्त व्यक्ति मराठा और दूसरा बंगाली है। चेहरों की बनावट में कुछ ऐसा भेद अवश्य लम्ब पड़ता है जो उनके पृथक् वर्गों में घोट देता है। जनविज्ञान और हमारे अंग-मानुषनिति, नानिजामान, कपालनिति इत्यादि सभी अंग-संस्था में हैं, जिनकी कालान्तर में वृद्धि होने की शक्ति है। वर्तमान अवस्था में भाषाओं द्वारा एकजातीयता की वृद्धि अधिक दृढ़तापूर्वक की जा सकती है। मुख्यतः उन्हीं के अंग-पर ग्रंथकर्ता ने वर्तमान भारत को पूरे एक बड़े प्रदेश में घोटने का उद्योग किया है; वह इस प्रकार है—

- हिन्दी खण्ड में (१) अन्तर्वेद अर्थान् संयुक्तान् कृतान् कृतान्  
 ( ) राजस्थान अर्थान् राजस्थानान्  
 (३) वेदिकोशल अर्थान् वेदिकोशलान्  
 भारत का बहुत का  
 (४) बिहार  
 (५) नेपाल

- पूरुब स्वर्ग में ( ६ ) भूटान तथा आसामोत्तर प्रदेश  
 ( ७ ) आसाम  
 ( ८ ) बंगाल  
 ( ९ ) उड़ीसा
- दक्षिण स्वर्ग में ( १० ) आन्ध्र या तेलंगण  
 ( ११ ) तामिलनाडु अर्थात् मद्रास का दक्षिणी भाग  
 ( १२ ) सिन्धु या मालान  
 ( १३ ) कर्नाटक अर्थात् मद्रास प्रांत  
 ( १४ ) कर्णाटक अर्थात् कन्नड़ भाग का क्षेत्र  
 ( १५ ) महाराष्ट्र अर्थात् बम्बई प्रांत का पश्चिम भाग
- पश्चिम स्वर्ग में ( १६ ) गुजरात  
 ( १७ ) सिन्धु या सिन्ध-कलान
- उत्तरपश्चिम स्वर्ग में ( १८ ) अफगानस्थान  
 ( १९ ) कश्मीर-कश्मीर  
 ( २० ) पंजाब ।

उपर लिखे कृत्र नामों की उपबुद्धता पर संशयकार ने कुछ शक्य प्रकट की है, और १००० के हमारे कृतनोट में लिखा है कि 'यदि मनुने पूर्वी दिग्देश क्षेत्र को एक प्रांत मानना अभीष्ट हो तो उसका नाम बंगाल पश्चिम ही मायिक होगा, क्योंकि अथवा प्राचीन उत्तर बंगाल है और छत्तीसगढ़ दक्षिण बंगाल क्षेत्र के बीच बंगाली या कम्-भूमि (प्रयाग प्रदेश) और काश्मीर (उत्तर प्रदेश) में भी उत्तर कागज की ही वाली है उस देश में उत्तर-पश्चिम क्षेत्रों के दक्षिण में ही उत्तर कागज नाम प्रांत होगा-

अंतर्वेद, बुंदेलखंड, कोशल । और कोशल में चार प्रदेश होंगे- उत्तर कोशल, कौशान्धी, कारुप, दक्षिण कोशल । यह प्रश्न आलोचना के लिये छोड़ा जाता है । इन शंकाओं का केन्द्र चेदि-कोशल नाम है, जहाँ का मैं निवासी हूँ, इसलिये इस विषय पर मुझे अपनी राय प्रकट करना अभीष्ट जान पड़ता है । जिन कारणों से प्रेरित हो कर पंडित जी ने चेदि-कोशल नाम चुना है वे प्र० २०५-२०७ में दिये हैं । मेरी समझ में वे काफी जान पड़ते हैं । यथार्थ में महाकोशल का विस्तार प्राचीन काल में निदान वर्धा नदी तक था और उसमें वर्तमान चार मराठी जिले अर्थात् भंडारा, नागपुर, वर्धा, और चांदा भी शामिल थे । चीनी यात्री युवनचवांग के भ्रमण के समय महाकोशल की राजधानी चांदा ही जिले में भद्रावती वर्तमान भांडक में थी । पश्चान् वह रायपुर जिले के श्रीपुर वर्तमान सिरपुर को अन्तरित कर दी गई थी । हैहय अथवा कलचुरि नरेशों का राज्य चेदि नाम से चलता था और आसपास की जो भूमि राज्य में आती जाती थी वह चेदि में समाती जाती थी जैसा कि वर्तमान समय में ब्रिटिश भारत में हो रहा है । महाकोशल चेदि राज्य का एक भाग था जिसमें कलचुरि वंश के माण्डलिक त्रिपुरी-नरेश के अधीन राज्य करते थे । न्वयं त्रिपुरी ( वर्तमान तेवर ) जो मेरे एक ग्राम से पाँच मील की दूरी पर है, डाहल मण्डल के अन्तर्गत थी, जिसका विस्तार मलकापुरम के शिलालेख में यों दिया है -

अस्ति विश्वम्भरासारः कमलाकुलमन्दिरम् ।

भागीरथीनर्मदयोर्मध्यं दहलमण्डलम् ॥

इसलिये जिस प्रांत का नाम पंडित जी ने चेदि कोशल रखा है उसके लिये यथार्थ में केवल चेदि काफी था परन्तु यह नाम बहुत काल से विस्मृत हो चुका है । इसलिये उसमें कोशल जोड़ देने से कुछ स्पष्टता आ जाती है । त्रिपुरी का राज्य ज्ञोष्ट्रीय ।



याँ या १३ वीं शताब्दी में मिट जाने पर भी महा या इति  
कोशल का राज्य अठारहवीं सदी के मध्य तक चलता गया, पर  
उसका क्षेत्र संकुचित हो कर वर्तमान छत्तीसगढ़ के बीच ही रा  
गया। इधर उधर के अंग कट कर अन्य प्रान्तों में सम्मिलित हो गये  
इसीलिये महाकोशल का दायरा छत्तीसगढ़ के भीतर गिना जा  
सगा। हाल ही में मराठी शिषों से भिन्नता दिखलाने के त्रिं  
मध्य प्रदेश के इन्दी जिलों का नाम महाकोशल प्रचलित कि  
गया है। यह पंडितजी के मनोनीत नाम को पुष्ट करता है  
इसके स्वीकृत होने से अन्य नामों के बदलने की आवश्यकता नि  
जानी है।

महाकोशल की चर्चा मुझे यहाँ एक दूसरी समस्या का स्मर  
करानी है जिसके विषय में हम पुनःक में अनेक शंकायें उपस्थि  
की गई हैं, यह समस्या है मौराज्य की स्थिति की। प्रथ  
परिशिष्ट में जो प्राचीन भूगोल विषयक नई चर्चा प्रविष्ट  
गई है, उनमें पृ० ३१६, ३१७ पर मौराज्य का चित्र है। व  
पर कलनाया गया है कि यह नाम राजतरंगिणी में ललितादि  
के उत्तर-दिग्दिग् के देशों में और वात्स्यायन के काममूत्र में  
मिलता है। काममूत्र के टीकाकार ने 'वज्रवन्तदेशान्परिषं  
मौराज्यम्' लिखा है, हमपर से कल्पना की गई है कि मौरा  
मूटान या दार्जिलिङ्ग (प्रचलित दार्जिलिङ्ग) के परिषम ही  
चाहिये, क्योंकि निम्न भाषा में मूटान को दुग्गुम कहते  
जिसका अर्थ होता है विजली का देश और दार्जिलिङ्ग का  
होता है वज्रहीन। इन स्थानों में बहुपत्तिक विवाद की प्रथा  
कारण अनुमान दिया गया है कि उस और का आधुनिक च  
प्रदेश टीक मौराज्य होगा। वरन् राजतरंगिणी के मौरा  
का निर्देशन नहीं दिया गया। कहा जाता है कि ललितादि  
जिस क्षेत्र में अनेक देश जीवता गया उन्ही क्रम से राजतरंगि

में उनका नाम दर्ज किया गया है, यथा कान्यकुब्ज को जीत कर उनकी सेना कलिंग को घड़ी, वहाँ से कर्णाट, कोंकण, द्वारका, अश्विनि, कान्धोज, तुःभ्यार, भौट्ट, दरद और प्राग्ज्योतिष को सर करती हुई चालुकाम्बुधि को पहुँची। तन्परचान् स्त्रीराज्य मिला, तद्योगान्विगलद्वैर्यान् स्त्रीराज्ये स्त्रोजनोऽकरोत्। स्त्रीराज्य के परचात् उत्तर कुद मिला जिससे जान पड़ता है कि ये दोनों देश एक दूसरे से सटे हुए थे। सर औरल स्टाइन ये दोनों नाम कल्पित समझते हैं, परन्तु ग्रन्थकार के अनुमान को चीनी यात्री युवनच्वांग और बृहत्संहिता से कुछ सहारा अवश्य मिलता है। युवन च्वांग ने पो-ला-हि-मो-पु-लो (ब्रह्मपुर) देश का जिक्र किया है जिसे वह पूर्वीय स्त्रीराज्य कहता है। उसका विस्तार उसने पूर्व में तिब्बत तक बतलाया है। बृहत्संहिता में स्त्रीराज्य की गणना परिचमोत्तरीय देशों में की गई है।

परन्तु बहुपतिक प्रथा का प्रचार दूर दूर के अनेक देशों में था, इसलिये स्त्रीराज्य की स्थिति किसी किसी ने भारत के विलकुल दक्षिण में की है। एक (मि. लांगन) ने तोलकाद्वीप के मिनिकोइ टापू को स्त्रीराज्य ठहराया है। मिनिकोइ मलाबार के निकट है, जहाँ बहुपतिक प्रथा का अब भी प्रचार है। लांगन का कहना है कि मिनिकोइ द्वीप में स्त्रियों का बहुलता अब भी है। यदि इसी बात पर सयदारमदार हो तो अजरवेजान की जस्सैअन और ओरसोशियन जातियों के प्रान्त को असल स्त्रीराज्य कहना चाहिये। ये दोनों काला समुद्र और कारिपयन के बीच में हैं। यहाँ की स्त्रियाँ आज भी पूर्ण रूप से स्वत्व जमाये हुए हैं। युवन च्वांग ने लिखा है कि पूर्वी स्त्रीराज्य में देशरक्षा और खेती के सिवाय पुरुषों से कुछ काम लिया ही नहीं जाता था। अजरवेजान के स्त्रीराज्यों में तो पुरुषों में कोई भी काम नहीं लिया जाता। स्त्रियाँ सब कुछ करती हैं। अगर कोई पुरुष निठन्लेपन में उक्ता कर कुछ काम कर बैठे तो



दिले का पश्चिमी भाग मध्य निचलेवर्ती यवननाल दिले के खो-  
राध्य कहलाना रहा हो और पूर्वी भाग मूर्खित तो कानमूत्र के  
टीकाकार का कथन बिलकुल ठीक जन जाता है, क्योंकि चौश  
दिले के दोचौशेब शैरागड़ है जिसका प्राचीन नाम बरु' था।  
इसके सिवाय यवननाल दिले में अब भी एक जाति पाई जाती  
है जिनमें दहुरतिक प्रथा का विशेष प्रचार था। इस जाति का  
नाम कोलान है। जिसकी भाषा से जान पड़ता है कि ये लोग  
द्राविड़ों से पहले के निवासी हैं। उनके आसपास द्राविड़ी  
गोंड बहुत रहते हैं। परन्तु उनकी वैवाहिक रीति कोलानों  
की रीति से बिलकुल विपरीत है। गोंडों में लड़की को  
पकड़ ला कर विवाह कर लेने की प्रथा थी, कोलानों में लड़की  
लड़के को पकड़ लाती थी और उससे विवाह करती थी। स्त्रियों  
का स्वत्व पुरुषों से बड़ा था। इन्हींसे वे पुरुषों से बलात्कार  
कर सकती थीं। ऐसे स्थल में स्त्रियों का राज्य होना बिलकुल  
स्वाभाविक जान पड़ता है।

इन प्रकार असत स्त्रीराज्य की स्थिति की संभावना मध्य-  
प्रान्त में प्रतीत होती है, परन्तु यह भी हो सकता है कि स्त्री-  
राज्य एक से अधिक रहे हों। दिग्विजयों में तो सभी देशों को  
प्रविष्ट करने का प्रयत्न किया जाता था जिसमें यह कदा न जा  
सके कि दिग्विजेता अमुक राज्य को सर नहीं कर सता। इतिहास-  
कारों का मन है कि मलिनादेश्य हिमाचल को तराई के प्रान्तों  
के दाईर कभी नहीं गया। उनके प्रचार की प्रतीति मात्र के लिये  
समस्त भारत के दिग्विजय का आडम्बर रचा गया और जन-  
श्रुति और कल्पना के आधार पर देशों के नाम लिखे गये। कह  
चुके हैं कि प्रसिद्ध पुराणखर्वेण्डा इन्टर ग्राइन ने भी यही मन  
प्रकाशित किया है और स्वराज्य इनर कुह इत्यादि को 'यवननाल  
कान्धन नाम' है कदाचन दशममंडल में नामनादेश्य क

द्विचित्रय की अनुभूति पर से स्त्रीराज्य की गणना हिन्दू  
ग्रन्थला अन्तर्गत देशी में कर दी हो।

मंदिग्ध विषयों में कल्पना के छोड़े तेजी से दौड़ने हैं जो  
थोड़ा सा भी आधार वा कर शीघ्र टूट जाते हैं। ए  
तर्क के युग में भी इस प्रकार की प्रवृत्तियों पाई जाती हैं।  
जिमका अदाकरण इसी पुस्तक में विद्यमान है, यथा १  
३१८-३२० पर शुक्तिमान पर्वत की पहचान के लिये  
विवाद खड़ा किया है, उस में कल्पना की मात्रा  
बलकार दिखाई देता है। डाक्टर मजूमदार ने उसे  
मान मिट्ट कराने के लिये जिम प्रकार का तर्क  
है उसे हमारे प्रकार 'मोमय-वायमीय' न्याय कहा  
है, परन्तु उन्होंने श्रुतिका को मूषिका और पत्ताशिनी  
वाले कह कर इन मूलग्रन्थों पर उसे हीराधार  
कृष्ण के पटार में अमाने का जो प्रयत्न किया है  
विषय में क्या डा० मजूमदार प्रयत्न नहीं कर सकते कि  
नेवायिक इसे कौन सा न्याय कहने है? मध्यमान तो यह  
अब तक यद्योचिन सामर्थी न प्राप्त हो जाय, तब भी  
मंदिग्ध कानों का निर्णय होना कठिन है।

पर्वत अथर्ववेद में अथर्वी पुस्तक के अर्द्ध वाक्य में कहा  
है 'मन्वन्तः की मूर्तिभयना को इस दृष्टि में देवता  
उपने देव के इतिहास पर कौन सा न्याय देना है'। एवं  
है कि इसका निर्णय आने उमरगा क मध्य कर दिव्यभा

५ १११ १३५१

५०० ५ ३१

हीराधार

# ढाँचा

## भूमिका

परिचय	पृ० [ २
प्रस्तावना २० २० हानलाल हाग	" [ ११
ढाँचा	" [ २१
॥ १ मनुष्य और प्रकृति	३
<b>पहला खण्ड—भारतवर्ष की भूमि</b>	
<b>पहला प्रकरण—भारतीय भूमि का विकास और</b>	
<b>उमके मुख्य विभाग</b>	
॥ २ भूमि का विकास और परिवर्तन	१७
॥ ३ मुख्य चार विभाग	२४
<b>दूसरा प्रकरण—उत्तर भारतीय मैदान</b>	
॥ ४ पानी और प्रदेश—भौगोलिक निरूपण	२२
॥ ५ पैदावार और घन-सम्पत्ति—आर्थिक दिग्दर्शन	२६
॥ ६ पथपद्धति और ऐतिहासिक पर्यालोचन	३२
<b>तिसरा प्रकरण—विन्ध्य-मैखला</b>	
॥ ७ पर्वत, पानी और प्रदेश - भौगोलिक निरूपण	६३
॥ ८ पैदावार और घन-सम्पत्ति—आर्थिक दिग्दर्शन	६६
॥ ९ पथपद्धति और ऐतिहासिक पर्यालोचन	६२
<b>चाथा प्रकरण—दक्खिन</b>	
॥ १० पर्वत, पानी और प्रदेश - भौगोलिक निरूपण	८३
॥ ११ पैदावार और घन-सम्पत्ति—आर्थिक दिग्दर्शन	८४
॥ १२ पथपद्धति और ऐतिहासिक पर्यालोचन	८७
<b>पाँचवाँ प्रकरण—मामान्न के पवनमालाये</b>	
॥ १३ हिमालय की पर्वतश्रृंखलाये और निम्न	९१

५ १५ उत्तरपूर्वी सीमान्त	पृष्ठ १	१३
५ १५ दक्षिण और बोलौर	१	१३
५ १६ मरीकोल और पामीर	१	१३
५ १७ हिन्दूकुरा और अफगानिस्तान	१	१३
५ १८ कश्मीर और लासबेला	१	१३
५ १९ हिमालय के पानी और प्रदेश	१	१३
५ २० सीमा-प्रदेशों की पैदावार और धन-सम्पत्ति— आर्थिक दिग्दर्शन	५	१३
५ २१ सीमान्त की पथपद्धति और ऐतिहासिक पर्यालोचन छटा प्रकरण—समुद्र-परिखा	१	१३
५ २२ जल-पथ का ऐतिहासिक पर्यालोचन	५	१३
५ २३ जल और स्थल-पथ का आपेक्षिक मूल्य दूसरा खण्ड—भारत-भूमि के निवासी मानवों प्रकरण भारतवर्ष की जातीय भूमियाँ	५	१३
५ २४ प्राचीन भूमियाँ अथवा स्वाभाविक प्रान्त	१	१३
५ २५ प्राचीन पर्व 'अनन' या मंडल	१	१३
५ २६ हिन्दी खण्ड के प्रान्त	५	१३
५ २७ पूरब खण्ड के प्रान्त	५	१३
५ २८ दक्षिण खण्ड के प्रान्त	५	१३
५ २९ पश्चिम खण्ड के प्रान्त	५	१३
५ ३० उत्तरपश्चिम खण्ड	५	१३
५ ३१ पर्वत-खण्ड के प्रान्त	५	१३
५ ३२ भारतीय प्रान्तों का परिगणन आठवाँ प्रकरण भारतवर्ष की प्रमुख भाषायें और न	५	१३
५ ३३ आर्य और द्राविड	५	१३
५ ३४ द्राविड वग	५	१३
५ ३५ आर्य वग और आर्य वृत्त	५	१३
५ ३६ दक्षिण वग	५	१३

- ॥ ३७ ईरानी शाखा पृष्ठ २४६  
 ॥ ३८ आर्यावर्ती शाखा २४८  
 ॥ ३९ आर्य नम्ल का मूल अभिजन और भारत में आने का रास्ता २५१

नौवाँ प्रकरण — भारतवर्ष की गौण भाषायें और नस्लें

- ॥ ४० मुंड ( शाबर ) और किरात ( तिब्बतघर्मी ) २५३  
 ॥ ४१ आग्नेय वंश और उसकी मुंड या शाबर शाखा २५४  
 ॥ ४२ चीन-किरात या तिब्बतचीनी वंश २५८  
 ॥ ४३ स्वामचीनी स्कन्ध २६०  
 ॥ ४४ तिब्बतघर्मी या किरात स्कन्ध २६१

दसवाँ प्रकरण — भारतीय जातियों और

नस्लों का समन्वय

- ॥ ४५ भारतीय वर्णमाला और वाङ्मय २६८  
 ॥ ४६ भारतवर्ष की मुख्य और गौण नस्लें २७२  
 ॥ ४७ भारतवर्ष की विविधता और एकता २८२  
 ॥ ४८ भारतीय जाति की भारतवर्ष के लिए ममता २८९  
 ॥ ४९ उसकी अपने पुरखों और उनके ऋण की याद २९२

## परिशिष्ट

### १. प्राचीन भूगोल विषयक

- (१) कम्बोज देश २९७  
 (२) कम्बोज के पड़ोस में गंगा ३०३  
 (३) किरात पृष्ठ ३०४  
 (४) उत्सवसङ्केत और किरात ३०४  
 (५) कालिदास के अनुसार भारतवर्ष की सीमायें, और उसका भारत की राष्ट्रीय एकता-विषयक आदर्श ३०८  
 (६) मौर्य सम्राज्य की उत्तरी सीमा और अशोक का ग्योतन पर अधिकार ३०९



(७) अजुन का उत्तर-दिग्बिजय	पृष्ठ ३००
(अ) 'दुर्लभ' से प्राग्बोधित	३०३
(इ) अन्नगिरि, बहिर्गिरि, उपगिरि; 'बलक', लोहित- सुम्ह और चोत्र	३११
(उ) श्रुतिक या 'युद्धी'	३१३
(अ) किम्पुरुष देश से उन्नत कुल	३१४
(क) कारभर	३१६
(९) स्त्री-राज्य	३१६
(१०) शुक्तिमान पर्यंत	३१८

२. भारतवर्ष की राष्ट्रभाषा, राष्ट्रलिपि, राष्ट्रीय वर्णमाला  
 और परिभाषाएँ; तथा कुछ प्रान्तों की

भाषा-लिपि समस्या

(१) हमारे देश के भाषा-विषयक केवल अनैक्य का प्रस्त	३२३
(२) जातीय लिपि और भारतीय वर्णमाला	३२८
(३) इदं	३३१
(४) लिपि की लिपि-समस्या	३३६
(५) उन्नत-स्थिति प्रान्तों की भाषा-समस्या	३३९

३. भाषा-लिपि संशोधन और परिभाषाएँ

४. भारतवर्ष का प्राचीन व्यन्त-विभाग

संशोधन और परिभाषाएँ	३४६
व्यन्त-विभाग	३४८

नोट्स

१—विन्त संशोधन और परिभाषाएँ के पर्यंत और प्राचीन	३५०
२—विन्त संशोधन और परिभाषाएँ के पर्यंत और प्राचीन	३५१
३—विन्त संशोधन और परिभाषाएँ के पर्यंत और प्राचीन	३५२





## ५१. मनुष्य और प्रकृति

मंतेर ने यह कहा था सकता है कि मनुष्य और प्रकृति में दो  
 १) मानव इतिहास की प्रेरक शक्तियाँ हैं; इन दोनों का पारस्परिक  
 संबंध और प्रतिबिम्ब का युक्तान्त ही मनुष्य का इतिहास है।  
 मनुष्य स्वतंत्र कर्ता है, वह अपनी कृति और अपने चरित का  
 जलन स्वयं अपने विचारों और इच्छाओं के अनुसार करता है।  
 हेतु मनुष्य की कृति उनकी प्राकृतिक परिस्थिति की अवस्थाओं  
 से परिमित और प्रभावित होती है, प्रकृति के दण्डों को वह  
 टिड़ नहीं सकता।

उद्योगवी शताब्दी ( ईसवी ) के निम्न दिनों में विज्ञान  
 मेदान का पहले पहल आविष्कार होने पर दुर्गोच में एक  
 नवदृश्य उठा था जो मानव इतिहास के प्रत्येक उत्तार-चढ़ाव को  
 ज्ञातवा भौतिक कारणों में करता था। वह यह निष्कर्ष करने का  
 कृतन करता था कि मानव इतिहास का विज्ञान प्राकृतिक प्रभावों  
 की विपरिणतियों का ठीक अनुसरण करता है, प्राकृतिक या  
 भौतिक परिस्थिति मानव इतिहास की एकमात्र प्रेरक शक्ति  
 है। उदाहरण के लिए, मनुष्य का सम्पत्ता की आगन्धिक दशा में  
 जब वह अपना जीवन प्रकृति में सीधा लेकर अपना अंगर में  
 एक मूल होने पर या सिद्धांत कार्य ही गुलाम करना जानता  
 था, मनुष्यों के विभिन्न कुशलों की तीन तरह की विभिन्न परिस्थि-

१. मानव सम्पत्ता का इतिहास मनुष्य के अपने अंतर्गत उत्पन्न  
 के कारणों में उद्विग्न करने के साथ साथ हुआ है। इन कारणों के उद्विग्न  
 काम में विभक्तिवित्त एवं है— १) विचारों का प्रभाव (२) अनुभव  
 का प्रभाव (३) इच्छा का प्रभाव ४) विचारों का प्रभाव ५) मनुष्य के अपने  
 दान उत्पन्न उत्पन्न का उत्पन्न का उत्पन्न उत्पन्न उत्पन्न उत्पन्न उत्पन्न  
 के उत्पन्न में एक उत्पन्न उत्पन्न उत्पन्न उत्पन्न उत्पन्न उत्पन्न उत्पन्न

तियाँ थीं। समुद्र-तट, सघन वन और सूखे बांगर या बा  
 एक मनुष्य का कुछ दिन तक गुज़ारा हो सकता है, किन्तु उसका द  
 दूर कर पीने हुए वह बरसों गुज़ार सकता है। इस प्रकार जहाँ श  
 शिकारी की जीविदा के लिए कई वर्गमील जंगल की ज़रूरत होती  
 वहीं उतने ही दायरे में पशुपालकों का एक अच्छा झुण्ड गुज़ारा क  
 लगा। हमारे जहाँ शिकारी मनुष्य अपनी कर्मेन्द्रियों की प्रेरक शक्ति से  
 काम लेना था, वहीं पशुपालक पशुओं की शक्ति से भी काम लेने लग  
 मनुष्य की बुद्धकला में तो इसमें एक क्रांति ही होगई पैदल और स  
 का परम्पर बना मुहायला है? उसके विवाह शिकारी मनुष्य जहाँ भ  
 निर्गोवी मनुष्य को मारकर फेंक या खा ही सकता था, वहीं पशुपा  
 उसे भी नाम बनाकर उस से पशु की तरह काम लेने लगा। इस प्र  
 हमारे की सैद्धन्त से लाभ उठाने का तरीका बना। अपने जानवरों  
 रूप में मनुष्यों के तिगोहों के पास कुछ सम्पत्ति और पूँजी  
 होने लगी। पशुपालक दशा से मनुष्य धीरे धीरे तीमरी भ  
 कृषक अवस्था में पहुँच गया। आरम्भिक कृषि का कुछ ज्ञान तो  
 शिकारी अवस्था में ही ही गया था, फल खाकर उनकी गुदलिपियाँ  
 अपने हँरे के पास डाल देना और फिर उन्हें उतना देवना था तब  
 पीरे उताने की शक्ति मायूम हो जाना कठिन न था। किन्तु  
 कृषि तब शुरू हुई तब वह जानवरों या दामों के पट्टों की तान  
 सेनी करने लगा। पशुपालक से कृषक दशा में आने पर उमर  
 बढ़ी सम्पत्ति तब बढ़ी। एक वर्गमील बरगलाह की आँखा एक या  
 लेन पर कई गुने मनुष्यों का गुज़ारा हो सकता है। कृषक अव  
 आने पर मनुष्य पहले पहले स्थावर इन्फिगत सम्पत्ति बनाने।  
 कृषि के साथ ही धीरे धीरे तिश्यों का भा भाग्यन हुआ। पशुपालक  
 से हस्त कर्मिय तिश्यों की दशा तब मनुष्य के पास प्रायः ही हा  
 कर्मियों की—अपने और अपने गुणों के पट्टों की या जानवरों।  
 को। पशुपालक और कृषक में अवशामौलमाइवाओं से बनने वाल

... ..  
 ... ..  
 ... ..  
 ... ..  
 ... ..  
 ... ..  
 ... ..  
 ... ..  
 ... ..  
 ... ..  
 ... ..  
 ... ..

... ..  
 ... ..  
 ... ..  
 ... ..  
 ... ..  
 ... ..  
 ... ..  
 ... ..  
 ... ..  
 ... ..  
 ... ..  
 ... ..

... ..  
 ... ..  
 ... ..  
 ... ..  
 ... ..  
 ... ..  
 ... ..  
 ... ..  
 ... ..  
 ... ..  
 ... ..  
 ... ..

मकीं । इस शैली के एक प्रमुख प्रवक्ता बकल थे । उन्होंने  
 उनके अनुयायियों ने भौगोलिक कारणों से अपनी  
 यह सिद्ध कर दिखाया था कि पूर्वी देशों के लोग क्यों  
 हैं, और मध्यता का उच्चतम विकास क्योंकर यूरोप के ठंडे  
 वायु और विस्तृत पेशीदा समुद्र-तट पर ही हो सकता  
 आधुनिक भारत की गुलामी के मूल कारण उनके जड़  
 निजीय समाज संस्थान की बुनियाद रूप जात-पॉत को उन्हें  
 भारतवर्ष के गर्म जलवायु और उर्वरा भूमि की  
 उपज सिद्ध कर दिखाया । क्योंकि इस उर्वरा भूमि में  
 ता प्रकृति अपना अत्यन्त मौल्य रूप प्रकट करती है, थोड़ी  
 मेहनत में आदमी अपने लिए भरपूर भोजन पैदा कर  
 जिस में यह स्वभाव में आलसी हो जाता है और दूर की  
 करता नहीं मीसता । दूसरी तरफ जय प्रकृति यहाँ  
 प्रकट होती है, तथा यह इतनी कट्ट होती है कि मनुष्य  
 सामन अपने को विशकूल निराक्त पाता है । इस प्रकार उस  
 आत्मविश्वास के क्षय अपने को भाग्य का गुलाम मानने  
 आदि बनती है । अदूरदर्शी और भाग्य-विश्यामी होने के  
 दुर्मित्र के समय यहाँ के जन मायागु निरी सुमीवन में  
 जाते हैं, उस समय उनके समाज के अल्पसंख्यक चालाक  
 की जिन्दा ने सुमिक्त के समय आसानी में संघय कर  
 होता है वन आती है, और वे जनमाधारण को छूट  
 दवा मरते हैं । इस प्रकार ऐसे जलवायु में स्वभाव में ही  
 में थोड़ी मेहनत ही जाता है, जिस का परिणाम  
 मायावाद और ईशनीय के इस यानाकरण में  
 हैम कल कुल मरता है । चायन की सामाजिक वना  
 हानिजन कर रहल न यह सिद्धलाया कि चायन माने  
 मानवता क्या स्वभाव में सामाजिक तथा व्यवहारिक समु

बेपरवाह होते हैं। उनकी रसायन भी गलत थी, और वन का इतिहास भी गलत। किन्तु जब चावल-मछली खाने वाले जापानियों ने युरोप की गेहूँ-गांख खाने वाली एक सय से बड़की जाति को पचाइ दिया, तब तो उन के घालू के मछल की युनियाद ही हिल गई। बुरी भाइयों बतलाया करती हैं कि गाजर का पानी चांदनी में रखने में उस में रोशनी लग जाती है और इसलिए इसको पिलाने में कमजोर जिगर के आदमी के जिगर में भी रोशनी आ जाती है! बकल और उनके साथियों की इतिहास की भौगोलिक व्याख्या-पद्धति भी प्रायः ऐसी युक्तियों पर उत्तारू हा जाती है। इन व्याख्या-शैली को देखते हुए एक जर्मन विद्वान ने बकल को मय में डूबे और आद्वितीय लालसुम्नषाड़ ( *Melastoma* ) की पदवी दी है।

दुर्भाग्य में भारतीय इतिहास की विवेचना में अभी तक इनी लालसुम्नषाड़ व्याख्या-शैली का जोर है और विद्यार्थियों की पाठ्य पुस्तकों में तो उनका एकमात्र दौर्भाग है। हमारे भातों और चारलों की पुरानी व्याख्या के अनुसार राजपूत और मुसलमान राज्यों की प्रत्येक लड़ाई का मूल कारण किमी न किमी मुन्दरी का रूप होता था, और राजपूतों की प्रत्येक हार का कारण या तो उनकी उदारता ( उपनाम सूर्यता ) और या उनके किमी घर के आदमी का विश्वासघात ! भारतीय इतिहास के पट्ट में आधुनिक परिदृष्टी की व्याख्या भी उनमें पट्टन आगे नहीं पहुँचती। स्वर्गीय विद्वान डा० विन्सेन्ट गिन्थ ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'आइस्मरट्ट हिन्टरी ऑफ इण्डिया' में

१. हमने लालसुम्नषाड़ के मय में डूबे और आद्वितीय लालसुम्नषाड़ की व्याख्या-शैली को उलटने का प्रयत्न किया है। हमने उनका एकमात्र दौर्भाग है। हमारे भातों और चारलों की पुरानी व्याख्या के अनुसार राजपूत और मुसलमान राज्यों की प्रत्येक लड़ाई का मूल कारण किमी न किमी मुन्दरी का रूप होता था, और राजपूतों की प्रत्येक हार का कारण या तो उनकी उदारता ( उपनाम सूर्यता ) और या उनके किमी घर के आदमी का विश्वासघात ! भारतीय इतिहास के पट्ट में आधुनिक परिदृष्टी की व्याख्या भी उनमें पट्टन आगे नहीं पहुँचती। स्वर्गीय विद्वान डा० विन्सेन्ट गिन्थ ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'आइस्मरट्ट हिन्टरी ऑफ इण्डिया' में





दुर्बलता सिद्ध हो जाती" है, किन्तु मिलिङ्क<sup>३</sup> के चन्द्रगुप्त में हारने से क्या सिद्ध होता है मो घतलाना वे भूल गये हैं। "उनकी दृष्टि, भारतीय पुरातत्त्व में स्वयं भारी भारी आदिप्रार करने के दावजूद भी, बकल, हीगल, मेन और मैक्स मुइलर की न्यापनाओं से आगे नहीं बढ़ पाई," क्योंकि "ऐतिहासिक तारतम्य की तमील का स्मिथ के लेखों में प्रायः अभाव ही है।" यूरोप और एशिया शब्द सिकन्दर के समय में भी थे, पर तब उनका वह अर्थ न था जो आज है, और सिकन्दर के समय में अभिमानी यूनानियों में आजकल के पच्छिमी यूरोप के उस समय के उन जंगली दाशिन्यों में से, जिनके वंशज विसैन्ट स्मिथ और उनके देश वाले हैं, यदि कोई यह कहता कि आप भारतीय आर्यों की अपेक्षा हमारे अधिक सगोत्र हैं, तो वे उस 'दर' की बात पर घुणापूर्वक हँसते !

हमारी पाठशालाओं की पाठ्य पुस्तकों के लेखक तो स्मिथ के भी कान काटते हैं। एक प्रसिद्ध डाक्टर और अध्यापक की भारतीय इतिहास विषयक एक अत्यन्त प्रचलित पाठ्य पुस्तक में मैंने पढ़ा था कि भारतवर्ष का जलवायु गर्म होने के कारण यहाँ के निवासी स्वभावतः कमजोर और ठंडे देशों के नरुद्ध निवासियों के शिकार होते रहे हैं। भूगोल की एक हाई स्कूल पाठ्य पुस्तक में, जो मेरे सामने है, यों लिखा है—

१. अर्ली हिस्टरी ऑफ़ इंडिया (भारतवर्ष का प्राचीन इतिहास) चौथा संस्करण, पृ० ११७।

२. 'मिलिङ्कम' का अन्तिम स् प्रथमा एकवचन का प्रत्यय है, न कि नाम का भग्न।

३. एन इंग्लिश हिस्टरी ऑफ़ इंडिया (भारत का एक अंग्रेजी इतिहास) पॉलिटिकल साइन्स इकाटनी ( राजनीति-विज्ञान-ग्रंथ मिक ), न्यूयार्क, जि० २४ ।



नमूना क्या ठंडे तिव्वत के निवासियों से बढ़ कर भी कहीं है ?

यह कहा जा सकता है कि भारतीय सेनायें यदि पिछली शताब्दी में लगातार विजय पर विजय पाती रही हैं तो अंग्रेजों की अधिनायकता में। किन्तु जो भी हो गर्म जलवायु में देह दुर्बल हो जाने की बात तो इस में कट जाती है। और वे दूसरों की नायकता के दिना स्वयं अपने को संगठित नहीं कर सकतीं, उनकी यह परिश्रम दुर्बलता क्या उसी बीमारी को सूचित नहीं करती जिसके कारण हमारे ये पुष्पक-लेखक स्वयं कुछ नहीं सोच सकते और अपनी छाँटों कुछ नहीं देख सकते - इस परिश्रम दुर्बलता का कारण निःसन्देह भारतवर्ष का जलवायु नहीं है।

अध्यापक चतुनाथ सरकार ने मगटा जाति के बारे में परिश्रम के एक एक गुण-दोष का कारण महागङ्गा की पहाड़ी परिस्थिति के प्रभावों में खोज निकाला है। महागङ्गा की प्राकृतिक परिस्थिति ने मगटा इतिहास पर बहुत बड़ा प्रभाव डाला है और छाम पर शिवाजी का परिश्रम तो महागङ्गा की भौगोलिक घनावट पर ध्यान दिये बिना समझ ही नहीं जा सकता, सो ठीक है। किन्तु जब अध्यापक महोदय मगटी भाषा में भी, जिसमें हिन्दी 'आर' जैसा कोई सम्मानमूलक शब्द नहीं है, महागङ्गा के पहाड़ों का प्रतिबिम्ब देखने लगते हैं, तब हम उनका साथ नहीं दे सकते। वे यह जानाती में भूल गये हैं कि गुजरात और पंजाब की शम्भुशामला भूमियों के निवासी भी 'तमे' और 'तुमों' में बढ़ कर कोई अन्य सम्मानमूलक शब्द नहीं जानते। दूसरे यदि हमें यह सिद्ध करना था कि महागङ्गा की भौगोलिक

१. यह सब कुछ ही एक सम्मानमूलक शब्द है जो कि उदाहरण के लिये 'तमे' और 'तुमों' के रूप में प्रयोग होता है। यह शब्द 'तुम' और 'तुमों' के रूप में प्रयोग होता है। यह शब्द 'तुम' और 'तुमों' के रूप में प्रयोग होता है।



करार नहीं जाती है। नमुन्य की स्वतन्त्र विचारपूर्वक कृति  
 लिए वह कोई न्याय नहीं छोड़ती। मानव इतिहास के अने  
 पहलुओं पर यह व्याख्या भी पूरी नहीं करती। नमुन्य का स्वतन्त्र  
 कर्तव्य आज इस युग में ही जब कि विज्ञान के महारे अपने प्रकृति  
 को बहुत दूर तक अपने बरा में कर लिया है नहीं जगा उस  
 प्राचीन सरल पशुप्राण के उतारने में भी जब आधुनिक चरवाहे  
 जंगल में फिरते फिरते विन्ताहुत मनुकृति से दारों को स्टंभों और  
 उनकी गति का निरोध करके लगने थे, या इन नमुन्य और  
 संसार के उद्भव और अन्त के प्रयोगों का विन्दन करने लगने थे,  
 तब भी उनकी वह विन्ता जीवन-संभान की किनी प्रेरणा को  
 नहीं प्रभुव मानव प्रतिभा के महान् उद्बोधन को सूचित करती  
 थीं। नमुन्य की विचारपूर्वक कृति इतिहास के प्रवाह को एक  
 प्रबल प्रवर्तक शक्ति है जो मानव इतिहास के पुँधले धारण के  
 समय से काम कर रही है।

प्राकृतिक परिस्थिति का नमुन्य पर बड़ा प्रभाव है। हिन्दु नमुन्य  
 अपने प्रयत्न में उस परिस्थिति तक को बहुत दाल मकता है।  
 वह रोग-न्याय को नहरों में सींच सकता, बलदलों का पानी मोल  
 कर उन्हें हरा भरा मैदान बना सकता, हिमालय और हिन्दूकुश  
 की गर्म हवा के लिये वादिय कर सकता और पानामा की पहाड़ी  
 जंगल में घेर कर अपने जहाजों के लिए गन्ना निकाल सकता है।  
 गकारा लोक के मर भी उसके प्रभाव से बाहर नहीं हैं।  
 नमुन्य के इस मानधर्म को खोदकर करके हुए भी इन जति-

स की आर्थिक व्याख्या को अधिकारा में सब मानते हैं।  
 नमुन्य-वादीयों की उँकी आधुनिक संस्कृति ( )  
 १. शैविज्य एवं आत्मिक रमण बन्त हुए मानविक परिस्थिति  
 आधुनिक उद्योग ( )

का न मही उत्तरी भौतिक सभ्यता (Civilisation) के विकास का जीवन मर्यादा या रौंदी की छीन रूपट मध्य में यहा प्रवर्तक कारण है—यदि स्पष्ट कारण नहीं तो कम से कम मुख्यतम उत्तोजक तो अवश्य है। मनुष्य की अनेक संस्थाएँ जिन्हें हम सर्वथा धार्मिक और सामाजिक माने बैठे हैं—उदाहरण के लिए विवाह और परिवार की संस्थाएँ—मुख्यतः आर्थिक शक्तियों की उपज हैं, और उन पर धार्मिक कलई पीछे से बड़ी है। उच्च आध्यात्मिक संस्कृति की भी आर्थिक शक्तियों और अवस्थाएँ चाहे उत्पादक कारण न हों, प्रतिबन्धकाभाव-रूप से वे उमका कारण होती हैं, और प्रतिबन्धक रूप से उसकी उत्पत्ति को नियन्त्रित कर सकती हैं। और भौगोलिक परिस्थिति इन आर्थिक अवस्थाओं का एक बहुत बड़ा अंग और अंग है। यह परिस्थिति मानव इतिहास की एकमात्र प्रवर्तक शक्ति भले ही न हो, उसके विकास का मार्ग बाँधने वाला एक बहुत बड़ा कारण अवश्य है, यहाँ तक कि किसी देश की भौगोलिक परिस्थिति को समझे बिना उसके इतिहास को समझना असम्भव है। यह मानने के लिए भौगोलिक परिस्थिति के प्रभावों को अतिरजित करके दिखाने की जरूरत नहीं है। अतिरञ्जना वास्तव में धुँधले और अपूरे ज्ञान की दशा में होती है।

इसीलिए भारतीय इतिहास का अध्ययन आरम्भ करने से पहले उसकी परिस्थिति की आलोचना और विवेचना करना आवश्यक है, जिससे इतिहास पर उसके प्रभावों को समझा जा सके, और उन प्रभावों की सीमा को ठीक ठीक निश्चिन किया जा सके। भारतीय परिस्थिति की उसी प्रकार की विवेचना का एक उत्तम अगले पृष्ठों में किया जायगा। पहले खण्ड में हम भारतवर्ष की भौगोलिक परिस्थिति की पड़ताल करेंगे, और दूसरे में भारतीय परिस्थिति की।

पहला खण्ड

भारतवर्ष की भूमि





## पहला प्रकरण

### भारतीय भूमि का विकास और उसके मुख्य विभाग



#### ३२. भूमि का विकास और परिवर्तन

ध्यान रहे कि हमें भारतवर्ष की भूमि-रचना को इस दृष्टि से देखना है कि उसने देश के इतिहास पर कैसा प्रभाव डाला है। भूतल की उपरली आकृति अर्थात् पर्वत, नदी, मैदान, जंगल, समुद्र, सरोवर आदि का उनमें संस्थान-क्रम, उसकी नमी और गर्मी, उसकी उपरली और निचली तहों की अर्थात् वानस्पतिक, जान्त्रिक और खनिज उपज, आदि सब वस्तुएँ उसके इतिहास पर प्रभाव डालती हैं, और ये वस्तुएँ भी सदा एक-सी नहीं रहतीं तो भी उनका विकास और परिवर्तन बहुत करके मानव इतिहास आरम्भ होने से पहले पूरा हो चुका था, और उसके बाद उसकी गति इतनी मन्द है कि मनुष्य की दृष्टि में उन्हें स्थिर कहा जा सकता है। परन्तु भारतीय परिस्थिति की आलोचना में उसके विद्यमान रूप को ही हम समझने रखेंगे, इसलिए इन पुराने परिवर्तनों का कुछ निर्देश पहले कर देना जरूरी है।

ज्योतिष-शास्त्रियों का कहना है कि हमारी पृथिवी तथा वे दूसरे ग्रह जिनका समूचा परिवार सौर मण्डल कहलाता है पहले सब सूरज में ही थे। सूरज से अलग होने के बाद पृथिवी धीरे-धीरे कैसे ठण्डी हुई, और उस दशा में उसका बनावकाम कैसे हुआ, इसकी विवेचना भूगर्भ शास्त्रियों करने है बहुत समय तक वह

इतनी गर्म थी कि उस पर कोई जीव पैदा न हो सकता था। उस काल को अजीव कल्प ( Azoiic age ) कहते हैं। उस कल्प में भी भूमि की बहुत सी चट्टानों के स्तर क्रम से बन रहे थे। अब प्रायः भूगर्भ के अन्दर है। पृथिवी का पैदा हुए त्रिविक्रम समय अब तक बीता है उसे चौबीस घण्टा माना जाय तो उसमें से बारह घण्टा अजीव कल्प रहा। उसके बाद प्रारम्भिक भाग में भूमण्डल में घेरें हुए थी पानी बन कर समुद्र में जमा होने लगे और उसके किनारे उथले बानों में और नमी वाली जमीन पहले पहल जीव सृष्टि होने लगी। चट्टानों के उपरले उपरले स्तरों का भी क्रम से विकास होता रहा। जीवों में वनस्पतियों सम्मिलित हैं, परिस्थिति के विकास के साथ साथ जीवों के भी से भी लगातार विकास होता गया। जीव सृष्टि के आरम्भ अब तक के काल को जीवों का विकास-क्रम देखते हुए तीन मुख्य स्तरों में बाँटा जाता है—पुराणजीव कल्प ( Palaeozoic age ), मध्यजीव कल्प ( Mesozoic age ) और नवजीव कल्प ( Cenozoic age )। इन्हें प्रथम (Primary), द्वितीय (Secondary) और तृतीय (Tertiary) कल्प कहते हैं। पुराणजीव कल्प की अवधि अजीव कल्प से आरंभ होती। प्रत्येक कल्प की चट्टानों में उस कल्प के जीवों के प्रस्तार शेष (Fossils) पाये जाते हैं। यदि हम किसी ऐसे स्थान जहाँ भूगर्भ में या नदियों समुद्रों आदि के धो डालने से चट्टानों की नीचे का मतलब ऊपर न निकल आई हो उस स्तरनिर्देश (Stratigraphical) या सतहचरणी का अध्ययन करें, अतः यह देखें कि जमीन भी एक के नीचे दूसरी परत या मतलब किम प्रकार परिवर्तन होता गया है, तो हम यह पायेंगे कि उसमें ऊपर नवजीव कल्प की रचनाये हैं, फिर मध्यजीव कल्प इत्यादि। इन कल्पों के फिर अनेक उप-विभाग हैं। मनुष्य

के दोषाये जीव या उदय पहले पहल नव्यजीव कल्प के आरम्भ में हुआ।

इन कल्पों का इतिहास जानने वाले घटलाने हैं कि भारतवर्ष में मध्य में पुरानी रचना आड़ाबला' विन्ध्यमेखला और दक्षिण भारत का पठार' है। इनका विषय आर्जीव-कल्प में ही पूरा हो चुका था। उत्तर भारत, अफगानिस्तान, पामीर, हिमालय और तिब्बत इन समय मध्य समुद्र के अन्दर थे। उसी प्राचीन समुद्र की लहरों ने आड़ाबला की बड़ी हुई नोक को काट काट कर उसके लाल पत्थर से गालवा का पठार बना दिया। हिमालय कल्प के अन्तिम भाग गटिका युग (Tertiary Period) में एक भारी भूकम्पों का मिलमिला शुरू हुआ जो कृतवी कल्प के आरम्भ तक जारी रहा। इसी भूकम्पों से हिमालय, तिब्बत, पामीर आदि तथा उत्तर भारतीय मैदान के कुछ अंश समुद्र के ऊपर उठ आये। हिमालय की सब से ऊँची चोटियों पर भी गटिका-युग के जीवों और वनस्पति के अवशेष पाये जाते हैं जब कि विन्ध्याचल और आड़ाबला की भीतरी चट्टानों में जीवों की सत्ता या कोई चिन्ह नहीं मिलता। उत्तर भारतीय मैदान का घासी मुख्य हिस्सा घाद में नदियों ने पहाड़ों से मिट्टी ला लाकर बना दिया।

किन्तु ये सब घटनाएँ मानव इतिहास में प्रायः पहले की हैं। तो भी एक तो देश के पहाड़ों की भौगोलिक स्थिति की और उस की वनित्त मन्वत्ति के स्वरूप और प्रकार को ठीक ठीक समझने

१. राजपूताने का प्रसिद्ध पर्वत विमला नाम हिन्दी में अंगरेज़ी में और फिर अंगरेज़ी में हिन्दी में आते हुए 'अवली' बन गया है। आड़ा = विरल, घना = पर्यंत। दे० परिशिष्ट ३।

२. ऊँचा पहाड़ी मैदान, अंगरेज़ी Plateau. दे० परिशिष्ट ३।

के लिए इन घटनाओं के इतिहास को थोड़ा बहुत जानने जरूरत होती है; दूसरे, भारतवर्ष के आरम्भिक मनुष्यों ने कि वे शिकारी दशा में पत्थर के हथियार\* बर्तते थे, वह पुरानी परिस्थिति देखी होगी, इस कारण उनके इतिहास समझ सकने के लिए हमें उस परिस्थिति के रूप का पता चाहिए। उदाहरण के लिए, भूगर्भ शास्त्रियों का कहना है कि कश्मीर की रम्य घाटी कभी समूची एक म्हील थी, कश्मीर पुरानी दन्तकथाएँ भी इसी बात को सूचित करती हैं, और से आरम्भिक मनुष्यों के पत्थरों के जो हथियार पाये गये हैं सम्भवतः उस काल के हो जब कि उस घाटी में आरम्भिक और दलदल के बहुत से अंश बाकी थे। उस काल के के भ्रमणों और प्रवासों के मार्ग पर विचार करते समय लिए उस म्हील को ध्यान में रखना जरूरी होता है। तो भी युग मनुष्य की दृष्टि से प्रागैतिहासिक ही था।

असल मानव इतिहास तो तब से शुरू होता है जब के गिरोह किसी नियम और व्यवस्था से संगठित होकर अन्दर एक क्रमागत सामूहिक एकता अनुभव करने लगते हैं।

१ मनुष्यके जीविका-माध्यमों की क्रमिक उन्नति को देखने हुए विचार उसकी सभ्यता के विकास का एक पैमाना बनाया गया है जिसे शिकारी अवस्था, पशुपालक अवस्था आदि विभिन्न दर्जें हैं, उसी प्रकार उसके हथियारों की क्रमिक उन्नति की सुनियोजित पर एक दूसरा पैमाना बनाया गया है। इस पैमाने में सबसे पहले पुराणायन-युग (Palaeolithic age) था, जब कि मनुष्य पत्थर के भड़े हथियारों से चलेता था, उसके बाद नवपायन-युग (Neolithic age) आया, जब विकसित पत्थर के हथियार बर्तने लगा। फिर ब्रॉन्स-युग (Bronze age) या ताम्र-युग और अन्त में लोह-युग आया। अरम-युग में दशा के साथ साथ चलता है।

अर्थात् जब इनका समाज एक तो किन्ती वाकायदा विधि व्यवस्था या नियम पर संगठित होता है, और दूसरे वह अपने पूर्वजों से अपने वंशजों तक एक धारावाहिक परम्परागत एक-सूत्रता अनुभव करने लगता है।—अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति अपने को एक समूह का अंग समझता है जो समूह एक आकस्मिक अत्यापी जमघट नहीं प्रत्युत एक परम्परा से चला जाने वाला अनेक पुरवों का समुदाय होता है। ऐसे समूहों के सामूहिक जीवन की घटनाओं का क्रमिक वृत्तान्त ही इतिहास कहलाता है, इसलिए इतिहास की सत्ता से पहले सामूहिक चेतना होना आवश्यक है। कुछ अवस्था में पहुँचने के बाद जब समुदायों के समूह निश्चित प्रदेशों में स्थायी रूप से बसने लगते हैं, तब तो यह सामूहिक चेतना पैदा हो ही जाती है, किन्तु उसके कुछ पहले पशुपातक और फिरन्दर दशा में भी इसका प्रायः उदय हो चुका होता है।

उक्त मानव इतिहास के युग में हमारे देश के पर्वतों को तो लेगमग समावन और स्थायी कहा जा सकता है, किन्तु उसके भू-निवेशन में और छोटे साधारण परिवर्तन होते रहे हैं। वे मध्य परिवर्तन समुद्रों, नदियों और मैदान की आकृति में हुए हैं। बहुत पुराने समय में राजदूताना का धर एक उथला समुद्र था। सम्भवतः वह दशा आरम्भिक ऐतिहासिक काल में भी यनी रही थी। सरस्वती नदी वसी समुद्र में अपना पानी ले जाती थी। भारतवर्ष की सभी नदियों पहाड़ों की निम्नी छोटी छोर अपने मुहानों पर टेर करती और समुद्र की कोख में से लगातार नये-

१. 'आर्योद्य-एन्वेन्ट इन्डियन हिस्टोरिकल ट्रेडिंग ( प्राचीन भारतीय ऐतिहासिक अनुभूति )' नामे इस प्रन्थक निर्देश प्रा० भा० दे० ४० या प्रा० ४० संकेत से किया जायगा )। पृ० २१० ।

सैदान निचालनी रही हैं। अरुण के जमाने में सिन्धु नदी काँठा मृगालीन पर समुद्र से लगता था, आज वह दक्खिन है ! इस प्रकार किसी जमाने में जहाँ बड़े बन्दरगाह आज वहाँ ऊँचाई खंडहर हैं ! तापखर्ची नदी के मुहाने में बोरस सन् के आरम्भ में एक प्रसिद्ध बन्दरगाह था, अब वह सूखे बंगाल में तामरुक और गुजरात में सुरत और भरुच की भी इसी प्रकार पहले की तरह समुद्र के किनारे नहीं रही। वर्ष की नदियाँ भी अपना मार्ग बहुत बदला करती हैं, उनके इन परिवर्तनों को ध्यान में न रखने से बहुत बार इतिहास को समझना असम्भव हो जाता है। चौथी पू० में पाटलिपुत्र गंगा और शोण के संगम पर बसा था, के पटना से सोन दस-बारह मील पच्छिम दक्षक गया आठवीं शताब्दी ई० के शुरू में रावी मुलतान में मिलती थी, और व्यास सतलज में मिलने के बजाय नीचे जाकर चिनाब में। इस बात पर ध्यान तो मुहम्मद इब्न कासिम की मुलतान की लड़ाई समझ नहीं आ सकती। किन्तु इसी सन् से ५-६ सौ बरस धारक मुनि के समय में व्यास आजकल की तरह मिलनी थी। बहुत जल्द जल्द अपना पाट बदलने कोसी भारतवर्ष की सब नदियों से अधिक बदनाम है।

१. विषाट् सुतुद्रयो मग्नेदमाययो—निरुक्त, २०, १। इससे लगता है कि दोनों परस्पर मिलनी थी, परन्तु दुर्गाचार्य उसकी व्याख्यान लिखत हैं—विषाट् सुतुद्रयोः नद्या मग्नेद सगमम् माययो यत्र विषाट् सुतुद्रयो इतराभिः सिन्धुवादिभिर्नदीभिः सग्मिन्ने इत्यर्थः। अन्तिम वाक्य में दुर्गाचार्य ने विष्णुकुल गोलमाल कर निरुक्तकार के शब्दों में वह अर्थ हासिल नहा पतान हाता। अन्तिम सूक्त (३, ३३) का व्याख्या में निरुक्तकार ने ये शब्द कहे हैं





प्राचीन हरी भरी बस्ती को सूचित करने हैं, किन्तु चिनाब की नई नहरें निकलने तक यहाँ ऐसा बियाधान जिसमें अनेक स्थानों पर मृगमरीचिका के दरय देखे जासकते।

भूमि की निचली तह में कोई विशेष प्राकृतिक इतिहास की स्मृति में नहीं हुआ, पर मनुष्य के हाथों ने खानों की खोद खोद कर खाली कर डाला है। गोलकुण्डा पुन्नाडु की खानें अब हीरे और गोमेद नहीं सूती, और सिमान की आधी खुदी गन्धक की खानें हमारे पूर्वजों के हाथों के स्मारक रूप से विश्रमान हैं।

इन परिवर्तनों पर ध्यान रखते हुए हम भारतीय विश्रमान नदरों पर उन सब बातों का अध्ययन कर सक्ते हैं जो हमारे इतिहास के मार्ग को प्रभावित करती रही हैं। भविष्य में भी करेंगी। भारतवर्ष की सतह के किसी नदरों को सामने रख कर आगे आने वाली बातों को सुगम होगा।

### ६३. मुख्य चार विभाग

भारतवर्ष की सतह के किसी अच्छे नदरों पर, जिस समुद्र-मनह से भिन्न भिन्न ऊँचाइयाँ अलग अलग रंगों में रक्खी हों, जो बात मथ से पहले दीख पड़ती है वह यह गंगा और सिन्ध के मुहानों से शुरू कर उन नदियों के कोंठों तक लगानार दो मैदान चले गये हैं जो ऊपर जाकर हो गये हैं। यही उत्तर भारत का विशाल मैदान है।

१. प्राचीन भारत में जो हम समुचे उत्तर भारतीय मैदान की गनने का विचार पाते ह। पालि नाहमय में उसका नाम है—अभ्युदय (अभ्युदय) अथवा अभ्युदय नल, ३० ज्ञानक ( फौसबाल-स० ) ३० १,





मन्त्रो गीता सु... (मन्त्रो गीता सु...)  
मन्त्रो गीता सु... (मन्त्रो गीता सु...)  
मन्त्रो गीता सु... (मन्त्रो गीता सु...)  
मन्त्रो गीता सु... (मन्त्रो गीता सु...)  
मन्त्रो गीता सु... (मन्त्रो गीता सु...)



१. श्री गीता सु... (मन्त्रो गीता सु...)  
१. श्री गीता सु... (मन्त्रो गीता सु...)  
१. श्री गीता सु... (मन्त्रो गीता सु...)  
१. श्री गीता सु... (मन्त्रो गीता सु...)  
१. श्री गीता सु... (मन्त्रो गीता सु...)



सतलुज के और आधा जमना के खादर के साथ गिन लें, तो उत्तर भारतीय मैदान के स्पष्ट दो हिस्से हैं—एक सिन्ध का मैदान और दूसरा गंगा का मैदान ।

इन दोनों हिस्सों के फिर कई स्पष्ट टुकड़े होते हैं । सिन्ध के मैदान में जहाँ सिन्धु-नदी अरबों पौबों मुखायें फैलाये हुए हैं, वह पंजाब है; जहाँ उन नद्यों का पानी सिमट कर अकेले सिन्ध में जागया है, वह सिन्ध है । इसी प्रकार गंगा के मैदान में जहाँ गंगा जमना दक्षिण-पूर्व-वाहिनी हैं, वह उपरला गंगा-कोटा है, जहाँ वह ठीक पूर्व-वाहिनी हो गई है बिचला गंगा-कोटा है; और जहाँ फिर दक्षिण-पूर्व फेरकर उसने मनुष्य की तरफ अपनी बाँहे फैलायी हैं वह निचला गंगा-कोटा या गंगा का मुहाना है । वहाँ ब्रह्मपुत्र भी उसमें आ मिला है, इन दोनों के मुहाने का पुगना नाम समतल है । उत्तर तरफ गंगा और ब्रह्मपुत्र के बीच का मैदान बरेन्द्र है, समतल के पूर्व मैदान का दुबड़ा पुगना बंग है, और समतल के पश्चिम राढ़; गढ़ बरेन्द्र बंग और समतल मिला कर बंगाल का मैदान बनता है । गंगा-मैदान के उत्तर-पूर्वी छोर पर ब्रह्मपुत्र के पश्चिम-पूर्व प्रवाह का कोटा स्पष्ट एक अलग प्रदेश—खामान—है । इन प्रवाह उत्तर भारतीय मैदान में कुल दो प्रदेश हैं—(१) सिन्ध, (२) पंजाब, (३) उपरला गंगा-कोटा, (४) बिचला गंगा-कोटा, (५) बंगाल और (६) खामान ।

### ३५. पंजाब और धन-सम्पत्ति—आर्थिक दिग्दर्शन

उत्तर भारत का यह मैदान समस्त के अत्यन्त उपजाऊ इलाकों में से है । मध्यम का उच्च एवं उच्च नदीयों के उपजाऊ कोटों में ही तथा या और मध्यम के उच्च नदीयों



का अद्वय प्रकट करने, और यों जाने भारतवर्ष में परिचित होने तक उन और वेदान को ही जानने थे ।

१. भारतवर्ष में भी वैदिक काल में कदापि होने का कोई प्रमाण नहीं है । वेदों में उन, मन्त्र 'दीम और ताप' के ही कणों का उल्लेख है । कदापि का मन्त्र में पढ़ना उल्लेख आर्यनायन धीन मन्त्र ( १, ४, १० ) में है । कदापि पृथिवी के निम्न अधुन नगपनकन्द् वन्दोरापार लेह वैदिक वह्मन्त्र में कदापि का उल्लेख न होने का कारण यों करने है कि 'उन समय तक आर्य लोग दक्षिण या पूरव के कदापि पैदा करने वाले जिनों तक न पहुँचे थे ( इतिहासिक तथ्य प्रमाण इन पुराणों में है, — प्राचीन भारत का आर्थिक जीवन और प्रगति — विष्णु १, ४, ५ ) । इस प्रकार वैदिक काल में कदापि न होने की उल्लेख में एक भौगोलिक कारण ही है । किन्तु वैदिक काल में आर्य लोग पंचाय में और उपरले गंगा कटि तक थे, और उसके बाद पूरव तथा दक्षिण पहुँचे, एक तो यह कदापि सर्व-मान्य नहीं है, दे० पार्शीस—प्रा. अ. ४, २९७—३०२ । दूसरे उस कदापि को माना जाय तो वेदों में कदापि का उल्लेख उल्लेख उल्लेख है, क्योंकि दक्षिण-दक्षिण पंचाय वहाँ पहुँचा कदापि पैदा करने में मनुष्य भारत में केवल पहाड़ और पर्वतों में सीटे है, और उसी पंचाय, कुरांग और उपरले गंगा कटि में भी बहुत कदापि कदापि उल्लेख है, वहाँ 'पूरव के जिनों अधीन विष्णु गंगा में—अधुनकी कौली-गंगा को छोड़ कर—जिनों काल को कदापि नहीं उल्लेख । भौगोलिक कारणों से कदापि कदापि में नहीं करने चाहिए । प्राचीन-काल में कदापि का कदापि बहुत प्रसिद्ध था और यद्यपि पहाड़ों में कदापि के मन्त्र 'कालिको विनीत प्रायः मदा लगा रहना है, उनके दूसरे कारण है । वह यह है कि कदापि की उल्लेख पढ़ने पढ़ने कदापि देना में हुई थी । यह मन्त्रार्थ पृथिवीय मन्त्रों की अर्थिका की अर्थिका में सम्मान में ही है । मैं इसके लिए अपने निम्न निम्न राहुन सांख्यिक ।













मुलभ होना भी रहा हो। चार और चांगर की गौवों का उल्लेख हो चुका है। सिन्धु देश अर्थात् सिन्धु नदी का पिचला कौठा— 'प्राधुनिक सिन्धुसागर दोघाय और डेराजात'— सदा से घोड़ों की अच्छी नस्ल की खान समझा जाता रहा है। पंजाब के चार और धल तथा चांगर में भेड़ पालने का व्यवसाय भी बड़े महत्त्व का है, वैदिक काल से रावी का कौठा और गान्धार देश अपनी

१. प्राचीन सिन्धु-देश वही था न कि आधुनिक सिंध जो तब सौवीर कहलाता था, दे० रायचौधरी - पोलिटिकल हिस्ट्री और एन्ट्रॉप हंडिया ( प्राचीन भारत का राजनैतिक इतिहास ). पृ० ३१८। रघुवंश १५, ८७ में भी सिन्धु का वही अर्थ है। कुण्डकपुष्टिसिन्धुव जानक (२५४) में यह पाया जाता है कि उत्तरापथ के व्यापारी बनारस में 'सिन्धुव' अर्थात् घोड़े बेचने आते थे। फलतः सिन्धु देश उत्तरापथ में था, जब कि आधुनिक सिंध प्राचीन परिभाषा के अनुसार पश्चिम देश में सम्मिलित था, दे० नीचे § २५। नमक को भी संस्कृत में सिन्धुव कहते हैं, और नमक की पहाड़ियाँ आधुनिक सिंधुसागर दोभाय में ही हैं। रायचौधरी का यह विचार ठीक नहीं कि सौवीर आधुनिक सिंध का केवल दक्षिणी भाग था, और सिन्धु उत्तरी। उत्तरी सिंध भी सौवीर था, क्योंकि सौवीर की राजधानी रोहक (दीर्घनिकाय, पाली टेक्स्ट सोसाइटी संस्करण, जि० ३, पृ० २०८-९) आधुनिक रोरी है जो उत्तरी सिंध में है। पारसी साम्राज्य में जो 'हिंदु' प्रांत सम्मिलित था, वह भी मेरे विचार में प्राचीन सिन्धु था न कि आधुनिक सिंध। रायचौधरी स्वयं यह सिद्ध करके कि सिन्धु आजकल का सिंध न था, पारसी प्रकरण में यह बात भूल गये हैं क्योंकि यूनानी लेखकों के अनुसार पारसी 'हिंदु' प्रांत के पूरब मरुभूमि थी। वह मरुभूमि राजपूताने के थर के बजाय सिंधुसागर दोभाय का धल हो सकता है।



(आधुनिक प्रांग और चारसदा) पच्छिमी गन्धार की राजधानी थी। उरुनिशर के समय (नौवीं-आठवीं शताब्दी ई. पू.) में ही इन कस्बों और निधिला से गन्धार जाने वाले रास्तों की यात्रा सुगम हो गई। वह इतना चलता था कि कोई आदमी 'गाँव में गाँव पहुँचा हुआ गन्धार पहुँचा' सकता था।

जानकों के समय (आठवीं, छठी शताब्दी ई. पू.) तक्षशिला मनुष्य भारत का मुख्य विद्या-केन्द्र था, जहाँ भारतवर्ष के सब प्रदेशों में गरीब-प्रमीर राजारंभ बड़ी संख्या में ऊँच शिक्षा देने के लिए पहुँचा करते थे। गंगा-काँठे के मध्य गन्धार देश का व्यापार भी काँठे था। गन्धार से गंगा-काँठे तक होनेके निरन्तर लोगों के रुकते-चलने करने का ज़ोर है, जिन से प्रतीत होता है कि वह रास्ता खूब चलता और सुगम था। जानकों अनेक शहरों में उत्तम समय रही प्रतीत होती हैं। रोराह और अकबर की मड़के-आवन (ग्रैंड ट्रंक रोड) जहाँ गन्धे का नया संस्करण था, और जहाँ प्रकार काठ-कन का कलहरी से रोरावर तक का गंतव्य।

अकबर से आरंभकर उत्तर-पश्चिम में पूरब तक रोहरा रास्ता चलता है। रोरावर से महाजनपुर तक और वहाँ से लखनऊ तक जो मोड़ों-बेलवों-आवन गई है वह उत्तरी मार्ग को सूचित करता है और उसके अड़े कंधे में हिमालय की बाह्य शृङ्खला की पहाड़ियाँ देख पड़ती हैं। इन मार्गों की रेंग बलीराहाह से दक्षिण-पूरब की है केवल पंजाब की राजधानी को जाने के लिए, और अगन्धक तक फिर जाननी दिशा ठीक कर लेनी है। इन की आवन एक दक्षिणी मार्ग है जो लाहौर से रायबिड़, तिर्गानपुर, अर्धेह होकर गेहना जाता है, वहाँ चलना पार कर रोरावर में प्रवेश करना और गंगा के किनारे ही प्रवेश का पहुँचना



है, जहाँ फिर जमना पार कर गंगा के दक्खिन जारी रहता है। लाहौर के उत्तरपच्छिम फिलहाल एक ही मार्ग है। किन्तु उक्त समानान्तर दो दक्खिनी मार्ग अंशतः बन रहे हैं। यदि बम्बई सिन्ध पार बुन्दियाँ तक सीधा सम्बन्ध हो और बुन्दियाँ से खुशाब तक जो लाइन गई है और खुशाब से मरगोधा तक जो लाइन बन रही है, उनका मरगोधा के आगे मंगिला तक सम्बन्ध हो जाय जहाँ से आगे लाहौर तक लाइन है ही अथवा यदि पंजाब और अफगानिस्तान के मुख्य व्यापार पथ र गोमल के नीचे होगा इस्माइलखानों का सिन्धमागर दोआब के पार गंगा से सीधा सम्बन्ध हो जाय, और अंग से गोजरा उधे फाटिलका होते हुए भटिहा के करीब तक जो लाइन बन रही है, उसके द्वारा सीधे दिल्ली चले आये तो यह बम्बई-लाहौर-म और उनमें भी बढ़ कर होगा इस्माइलखानों-देहली-भाग के दक्खिनी रास्ते को सूचित करेगा। पेशावर खैबर खाली ला का रुख काबुल की तरफ है, होगा इस्माइलखानों-गोमल का का गयनी की तरफ रहेगा। लखनऊ के आगे उत्तरी गंगा के उत्तर उत्तर निरगुन पार कर कटिहाज पर्यन्तपुर हो आयास तक जा पहुँचना है, जब कि दक्खिनी रास्ता पर गंगा पार कर बनारस के सामने तक, और वहाँ से के दाहिने भागलपुर तक जाकर गंगा के साथ २ कलक अथवा बनारस के सामने या पटना के कुछ आगे से सिन्धुमेर के द्वारे का सीधे काट कर कलकत्ता निकल आना है।

इन मुख्य रास्तों के बीच बहुत से रास्ते हैं जो उत्तरी दक्खिनी मार्गों को परस्पर मिलाते हैं। उनमें से जो लखनऊ और अयोध्या से बनारस जाकर गंगा पार करके उनके पूरब इलाहाबाद और दक्खिनी रास्ता का परस्पर मिलावट करना सुगम नहीं रहता वह गंगा के आगे बहुत

है, और उसके उत्तर दक्खिन के रास्तों को मिथाने जाने वाले स्टीमरों द्वारा ही गंगा को लॉप सकते हैं। उसके नीचे केवल एक जगह अर्थात् नदिया और राजशाही जिलों के बीच माग घाट पर गंगा की मुख्य धारा पश्चा पर रेल का पुल है। इसी कारण बनारस में उत्तरपूरव तिष्ठत, उत्तर बंगाल और आसाम का गंगा, और विशेष कर उसका गीतलदह के पूरव का आसाम वाला टुकड़ा केवल ग्यानीय महत्त्व का है; उसकी गिनती मुख्य राजपथों में नहीं है।

किन्तु बनारस के नीचे गंगा और ब्रह्मपुत्र का जलमार्ग बड़े महत्त्व का है। गंगा में बक्सर तक और घाघरा में अयोध्या तक छोटे स्टीमर चलते हैं, पटना के नीचे गंगा में बड़े स्टीमर भी चलने लगते हैं। ग्वालन्देश में जहाँ गंगा और ब्रह्मपुत्र मिलती हैं, उनका भारी नाका है; वहाँ से ऊपर ब्रह्मपुत्र में घे दिब्रूगढ़ तक नियम में जाने है, और दरसात में आसाम के उत्तरपूरवी द्वार मदिया तक भी जा सकते हैं। पूरवी बंगाल की सुरमा नदी में भी उनका वाकायदा आना जाना है।

बंगाल में आसाम जाने को मैदान में के रास्ते केवल दो हैं, एक तो उत्तर बंगाल से ब्रह्मपुत्र के उत्तर उत्तर, दूसरे पूरवी बंगाल से गारो पहाड़ियों का चकर लगा कर नदी के दक्खिन दक्खिन। तीसरा रास्ता पूरव बंगाल से ग्यासी जयन्तिया पहाड़ियों के पूरव कपिली और धनसिरी नदियों की घाटियों में से ब्रह्मपुत्र के दक्खिन जा निरुला है। किन्तु ब्रह्मपुत्र ऐसी नदी है जिस पर कहीं भी कोई पुल नहीं है, इसलिए उसके दाहिने और बायें रास्तों के बीच केवल जहाजों से ही आना जाना हो सकता है।

पेशावर-पर्वतीपुर (या टीकू टीकू कहें तो खैबर-गीतलदह) वाले उत्तरी राजपथ में से जगह जगह हिमालय की तरफ शाखा-मार्ग गये हैं। नौशेरा से मालाकन्द दर्रे के नीचे दर्गई तक,



पुराने उमाने में पंजाब और सिन्ध की नदियों में भी गंगा-  
 ठे की नदियों की तरह जानाया था और जलमार्ग स्थलमार्गों  
 अधिक महत्त्व के थे। छठी शताब्दी ई० पू० के अन्त या  
 सवी के आरम्भ में प्राग्नि के सम्राट् दारपदु<sup>१</sup> का एक जल-  
 मपति स्थानांय नावें लेकर बालुल नदी के संगम से मन्मुषे  
 न्ध की यात्रा कर मन्मुद्र के किनारे किनारे लाल सागर के उत्तर  
 तक आ पहुँचा था। उसके बाद मिहन्दर जब अपनी चढ़ाई  
 व्याम नदी में वापिस लौटा तब उस ने पंजाबी नावियों से  
 २० नावों का एक देड़ा तैयार करवा के जेहलम नदी से सिन्ध  
 मुदाने तक मेनामक्ति उसी देड़े पर यात्रा की थी। मुस्लिम  
 वैशमियों ने लिखा है कि महमूद् गजनवी की सेना को  
 जिनार की चढ़ाई से लौटते समय पंजाब की नदियों के काँठों  
 रहने वाले जाटों ने लूटा-ममोटा और तंग किया था; इमीलिय  
 ररे धरम जब इनको दूरद देने के लिए महमूद् ने भारतवर्ष पर  
 न्तिम चढ़ाई की, तब मुसलमान में उत्तरे चौदह सौ नावों का देड़ा  
 गर कराश, जिसका मुशबला करने की जाटा ने चार हजार  
 वें जमा की। मध्यकालीन भारत के इतिहासलेखक लेनगूल  
 रिस्म ऐतिहासिकों के इस कथन की मजाह करते हुए फर्माते  
 —“जो भी हुआ हो, हम तसल्ली रख सकते हैं कि सिन्ध की  
 सरली धारा में कभी पाँच हजार नावें जमा न हुई थीं, और  
 पहली जातियों प्रायः नाविक लड़ाइयों नही लड़ा करतीं।”

१. नदीन शरमा स्त्र दाग, अंग्रेज़ी अक्षरों में डेरियम, दारपदु  
 । इस्तिम ए प्रथमा के एकवचन को सूचित करतः है, यह नाम का  
 न नहीं है।

२. मैट्टीहंवल इतिहास ( मध्यकालीन भारत ) ( स्तोरी भाग दि  
 तन्म—जातियों की कहान—संगीत ), पृ० ५०



इ नाकेन्द्रों के स्थान हैं, इस कारण भी उसका विशेष  
मामरिक शौर्य है। महमूद गजनवी अपनी पदाइयों में हमेशा  
भी रामने आया करता था।

किन्तु दिल्ली में बनारस तक दोनों रामने एक समान महत्त्व  
हैं, बल्कि दक्खिनी का महत्त्व उत्तरी से कुछ अधिक ही है,  
क्योंकि दोनों रामने जहाँ एक समान आयाद इलाकों में से  
करते हैं, वहाँ दक्खिनी रामने का दक्खिन भारत में व्यापार  
उत्तरी रास्ते के हिमालय वाले व्यापार से अधिक पौगती है।  
यदि हिमालय या हिमालय पार के प्रदेशों अर्थात् नेपाल तिब्बत  
प्रादि में से कोई अपनी मामरिक और राजनैतिक शक्ति बढ़ा  
ने और जापान या तुर्की की तरफ जागरूक हो जाय, तो उत्तरी  
मार्ग का मामरिक महत्त्व बहुत ही बढ़ जायगा। हिमालय के  
देश यदि अपने मशहूर फोयले की अनन्त प्रसुप्त शक्ति का प्रयोग  
करने लगे, तो उत्तरी मार्ग व्यापारिक महत्त्व में भी दक्खिनी  
की भात कर देगा।

बनारस के बाद उत्तरी राजपथ का महत्त्व दक्खिनी की  
अपेक्षा बहुत ही कम रह जाता है, क्योंकि दक्खिनी मार्ग जहाँ

1. भार की शक्ति अर्थात् पानी की भाष बनने समय फैलने की  
शक्ति से जय से मनुष्य काम लेने लगा है तब से हंधन एक अमूल्य  
खोज हो गई है। बिजली की शक्ति बड़ी मात्रा में पैदा करने की भी  
हंधन चाहिए। इन आविष्कारों के युग में पहला मुख्य हंधन तो पत्थर  
का कोयला ही था। बाद जलप्रपातों से बड़ी चला कर उससे बिजली  
निकालने की विधि निकली। उसमें एक बार बंध बना कर प्रपात की  
नियमित करने और चक्कियाँ ( रॉटन ) लगाने का जो स्वर्च हो जाय  
है, उसके बाद लगभग कुछ भी स्वर्च नहीं पड़ता, और बहुत ही सस्ती  
बिजली मिलती जाती है। जलप्रपातों का मूल्य इस प्रकार कोयले से  
कम न रहा, और इसलिए उन्हें अब सफ़ेद कोयला कहा जाता है।

समुद्र और विदेशों का द्वार खोलना है वहाँ उत्तरी आसाम में एकान्त प्रदेश की तरफ ले जाना है। किन्तु चीन की राहें जागृति ज्यों ज्यों हमके पूरबी छोर से अन्दर की तरफ आसाम के पड़ोसी युद्ध नान प्रान्त में पहुँचती जायगी त्यों त्यों आसाम के भीमान्त वा गौरव बढ़ना जायगा। भारतवर्ष और बरमा के लोहे की पटरी से परस्पर जोड़ने के लिए सब से सुगम रूत आसाम के दक्खिनपूरब छोर से बनकोई और नामकिउ पहाड़ों बीच से लाँच कर इगोबदी की घाटी में जा निकलने से ही होगा यदि भारत और बरमा इस प्रकार लोहे की लकीर से पभी उ गये तो आसाम-भाग का सब तरह का महत्त्व बढ़ जायगा।

किन्तु विद्यमान अवस्थाओं में उत्तर भारत का मुख्य ग पथ बढ़ है जो पशावर से अम्बाला या सहारनपुर से पहुँच दिहना की आर मुहना और फिर दिहला से कलकत्ता निहलना है। हम दखेगे कि हममें नदियों के पुलों के अतिर् नान स्थान नाकेबन्दी की दृष्टि से विशेष गौरव के हैं—एक का और जेहलम के बीच नमक की पहाड़ियों वाला टुकड़ा, इ कुदसुंय के ब गर वाला, और तीसरे बिहार और बंगाल के की पहाड़ी मेखला वाला।

उत्तर भारत के मुख्य मैदान के सब स्थल-भागों पर उक्त स्थानों के अतिरिक्त मुख्य रुदावट नदियों की ह। प्राचीन की मेनाओं और व्यापारियों के लिए जो नदियों की रुक बहूत बढ़ी थी। हमारे बाकमय से उम रुदावट की सब पुगानी बन्द रात्रा मुदाम के उगस्थान से है मुदाम उत्तर प ( कुरोब करीब आधुनिक रुदबमह ) का राजा और हमने गर्वी ( वरुणा ) के बिना उम रात्राओं

जातियों को, जिनमें आधुनिक पठानों के पूर्वज पक्थ लोग भी थे, इपट्टे हराया था । किन्तु मतलज ( शुतुद्रि ) और व्यास ( विपाश् ) के संगम पर पहुँच कर उसकी सेना ही रुक जाना पड़ा था, जब कि विश्वामित्र ऋषि के स्तुति करने से वे दोनों नदियाँ अपने उमड़ते प्रवाह को थाम कर इस प्रकार झुक गईं ' जैसे ( घबरे को दृढ़ ) पिलाने के लिए लौ झुक जाती है, अथवा पुरुष को आलिंगन करने के लिए कन्या, ' और सुदाम की सेना उनके पार उतर सकी ' । विश्वामित्र और नदियों को वह मनभावना चातुरीत ऋषि संहिता में सुरक्षित है<sup>१</sup> । बाद के लोगों की कविता में नदियों के देवताओं को गिमाने की वैसी शक्ति नहीं रही, इसलिए उनका रास्ता हमेशा हिमालय की छाँह में चलता हुआ उथले घाटों पर नदियों को पार करना पसन्द करता था । चाल्म फि रामायण ( लगभग ५०० ई० पू० ) के घृतान्न के अनुसार अयोध्या से जो मन्देशाहर भगत के ननिहाल केरुय देश ( पंजाब के आधुनिक गुजरात, शाहपुर, जेहलम जिले ) को गये थे, उनके रास्ते पर व्यास नदी के किनारे तक से पहाड़ रूष्ट दीखते थे । सिकन्दर ने अपनी सदाई में पंजाब की नदियों को हिमालय के निकट ही निकट लाँघा था । शकबर को अपने भाई के विरुद्ध ठीक बरसात के मौसम में फावुल पर सदाई करनी पड़ी थी, इसलिए उसने अपनी फौज को आगरा से अम्बाला तक ले जा कर लगातार हिमालय के साथ साथ रखवा था, यहाँ तक कि अमृतसर और लाहौर के मुख्य मार्ग को छोड़ कर गुरदासपुर और स्यालकोट जिलों में से गुजरना उसे पसन्द था ।

१ निहक. २, ७. २५ ।

२ मण्डल ३, सूक्त ३३ ।

३ रामायण २ ६८ १८, ६० परिशिष्ट १ । ७ ६ ।





सिन्धु के दाहिने तरफ का रुक-शराची की रेल का टुकड़ा तथा  
बेलांचिस्तान की समूची रेल-पद्धति निर्भर है। ✓

अटक और जेहलम के बीच का टुकड़ा उत्तरी राजपथ में  
रुक घास नाकेन्द्री की जगह है। दोनों नदियों के बीच साँधे  
रास्ते में यहाँ उनना ही अन्तर है जितना किलौर से जगाधरी  
तक सतलज और जमना में। हिमालय की शृंखला ने यहाँ  
नमक की पहाड़ियों के रूप में अपनी एक बाँधी आगे बढ़ा दी  
है, जिनसे जेहलम नदी का रास्ता बाँध दिया है। नमक की  
पहाड़ियों की यह स्थिति सामरिक दृष्टि से बड़े महत्त्व की है।  
ये पहाड़ियाँ सिन्धुमागर दोआब के उपरले आघाद हिस्से  
को नीचे के ऊँड़ हिस्से या थल से अलग कर देती हैं। उनके  
ठीक उत्तर ताफ़ हजारा जिला (प्राचीन उरशा) का और  
जेहलम के किनारे किनारे करमोर-घाटी का भी रास्ता है। हजारा  
जिले से दरद-देश की गिजगित-घाटी, उस के पार पामीर और  
पामीर द्वाग बलख-बदख्शाँ और चीनी तुर्किस्तान को सीधे  
रामने गये हैं जिनका उल्लेख हिमालय प्रकरण में किया  
जायगा। प्राचीन काल में पामीर और बदख्शाँ का नाम ही  
कम्बोज देश था और वह भारतवर्ष की सीमा पर एक  
शक्तिशाली राष्ट्र था। इसी कारण तब उसका सीधा रास्ता  
देने वाले उरशा का भी बड़ा गौरव था। इस प्रकार पूरबी  
गान्धार की राजधानी तक्षशिला काबुल कम्बोज और करमोर  
तीनों के रास्तों की जड़ पर था, और तीनों को काबू करती थी।  
सिन्धु को अभिसार देश। करमोर की दक्षिण पहाड़ियों में  
आधुनिक भिम्बर राजौरी पुंच रियासतों की चिन्ता वहाँ करनी  
पड़ी थी और शेरशाह ने वीर गन्धड़ों के उसी देश में एक तरफ

१ दे० नीचे, परिशिष्ट १ (१)।





























# तीसरा प्रकरण

## विन्ध्यमेखला

६७. पर्वत पानी और प्रदेश — भौगोलिक निरूपण

विन्ध्यमेखला की सीमाओं का निर्देश किया जा चुका है। मदा और सांन नदियों की घाटियों ने उसे दो फाँकों में बाँट दिया है। राजपूताना-मालवा के पहाड़ तथा भानरेड़, पन्ना और मोर-श्रृंखलाएँ उनके उत्तर रह गई हैं, और मातपुड़ा, गवाल-पुड़ा, महादेव, मेरुल, हजारीबाग, राजमहल श्रृंखलाएँ दक्षिण।

प्राचीन काल में इस समूची पर्वतमाला का विभाग इस प्रकार किया जाता था कि पार्वती और वनाम में लेकर बेनवा तक कुल नदियों का निकाल जिन हिस्से से हुआ है उसे पागियात्र पर्वत कहने थे; उनका पूरबी घड़ाव जिनसे कि बेनवा की पूरबी पान्या टमान (दशाणा केन और टोंस आदि नदियों का निकाल आता है वह विन्ध्यपर्वत कहलाता था; और उन दोनों के दक्षिण पानो और बेणुगंगा में लेकर उड़ीसा की वैतरणी नदी तक जित्त चरण धोती है वह श्रृत्त पर्वत था। अर्थात् इस दोहरी पर्वत-

१. वायुपुराण, प्रथम खंड, ४५, १०-१०३; विष्णु पुराण, द्वितीय खंड, १०-११; मार्कण्डेय पुराण, ५७, १९-२५। इस सन्दर्भ में बहुत उभेद और गोलमाल भी है; वायु का पाठ दूमरों से अधिक विस्तृत और शुद्ध है, विष्णु का बहुत संक्षिप्त। किन्तु वायु कूर्म और वराह पुराणी भाग का नाम श्रृत्त और दक्षिणी का विन्ध्य है, जब कि विष्णु में उससे उल्टा है, मार्कण्डेय में पूरबी का नाम रुक्म और





समूची विन्ध्यमेखला के पच्छिम से पूरब गुजरात के  
 सिक्क पांच टुकड़े हैं। पहला राजपूताना, जो चम्बल नदी से  
 इन का आड़ाबला के चौगिर्द का प्रदेश है। धर की मरुभूमि  
 का पच्छिमो छोर है जो उस सिन्ध से अलग करता है। धर  
 जो शब्द है, राजस्थानों में उसी मरुभूमि को डाट कहते हैं,  
 ( वह डाट भी पच्छिमा राजपूताने या मारवाड़ का अंग है।  
 निरी का अकेला कांठा और पूरब तरफ बनाम ( रणाणा )  
 कांठा भी उसी में सम्मिलित हैं। दूसरा मालवा का पठार,<sup>२</sup>  
 पानू चम्बल ( चम्बलवाती ) से सिन्ध तक प्रदेश, तथा उसके  
 दक्षिण नर्मदा की बिचली घाटी और सावपुड़ा शृङ्खला का  
 जो भाग बुध्दानपुर के ऊपर नर। आड़ाबला के निवाच  
 पन विन्ध्यमेखला का मरु में पच्छिमो खण्ड मालवा ही है,  
 मने दामार ( मन्दमार ), उज्जैन, धार, इन्दौर, भुवनेश्वर,  
 जना आदि प्रसिद्ध प्राचीन नगर हैं। राजपूताना और मालवा  
 शकल में गुजरात है। ताम्रग प्रदेश बुन्देलखण्ड है जिनमें<sup>३</sup>  
 नवा ( वेरवाती ) दमान ( दशाणा ) और केन ( शुक्तिमती )  
 कांटे, नर्मदा की उपरली घाटी और पचमदी में अमर-  
 कण्ड नर शृङ्खला का हिस्सा सम्मिलित है। उस ही पूरबी  
 तामा टोम ( नमवा ) नदी है। उसके पूरब मोन नदी का कांठा,  
 जो वह पच्छिम से पूरब बढ़ती है, बवेनखण्ड है। बवेनखण्ड  
 दक्षिण में वह शृङ्खला के अमरकण्डक पहाड़ की छाई में  
 दानरी के उररले पहाड़ पर छतोमगढ़ का नोया पठार है।  
 रत्नखण्ड-छतोमगढ़ को मिला कर हम विन्ध्यमेखला का  
 पूरा प्रदेश कहते हैं। उसके पूरब पागसनाथ पर्वत तक म्हाड़-<sup>४</sup>

\* प्राचीन दामपुर का स्वामीय नाम भावकन शिवार है। हिन्दु  
 तर्फी वाले इसे मंदपोर लिखत थे जिनमें नक़्तों में बही न  
 हा है।



मन्वन्त उपकार कायों मन्वन्तों का दान है। पहाड़ों के पर्वतों में  
 दानों के कारण का संग मैदान भी मन्वन्त, नृणा और मन्वन्त  
 ही मन्वन्त दान पुरा, जैसा नीचा और ऊपरमन्वन्त है।

उत्तर भारतीय मैदान की तरह विन्ध्यमेखला के भी पश्चिमी  
 भाग में पूर्वी भाग में कम पानी पड़ता है और इन में पूर्वी  
 उच्च होते हैं। इनलिए पूर्वी भाग में बहुत धने जंगल हैं; और  
 दानों में ही वहां धान होता है। पश्चिमी भाग की खेती में  
 गेहूँ बहुत पैदा होता है, पर मुख्य उपज जौ, राइस, धार, मक्की  
 आदि हैं जिन्हें छोटे पानी की उपजत होता है। मन्वन्त और  
 मन्वन्त के मैदान में भी इन पौधों की प्रधानता है। गुजरात में  
 इनके साथ साथ पावन भी है। विन्ध्यमेखला के जंगलों का पक्ष  
 "अच्छियों" की प्राचीन इतिहास में बड़ी प्रसिद्धि रही है, उन  
 अच्छियों के सामरिक और राजनैतिक प्रभावों का इन अलग  
 जंगल रहेंगे। हिन्दु विन्ध्यमेखला की उन सब वानस्पतिक और  
 जंगल उपज का जो जंगलों में पाया जाया है उत्तर भारत के  
 कर्पिक जीवन में विशेष महत्त्व रहा है। भागलपुर के पड़ोस के  
 शक्तिशालिह के जंगलों में टमर का कोया बड़ी मात्रा में पैदा  
 होता है। मन्वन्त जंगल प्रहार करने जंगल के लिए प्रसिद्ध है;  
 वहां काकर जंगल की भांगों में ही है।

हिन्दु विन्ध्यमेखला की मुख्य मन्वन्त खनिज रही है।  
 मन्वन्त के विकास में मन्वन्त की सब में पुगनी खनिजों में से  
 होने के कारण इन में अनेक प्रकार के इमारतों और कीमती  
 पत्थर तथा अन्य खनिज पदार्थ होंगे। इन में पाये जाते रहे हैं।  
 क्योंकि वे सब खनिज और मन्वन्त खनिज के मन्वन्त के ही गुण  
 मन्वन्त के मन्वन्त की खनिजों का मन्वन्त के खनिज पत्थर की  
 हैं जिन्होंने अन्वन्त के मन्वन्त मन्वन्त के मन्वन्त भी दाने हैं।  
 गुजरात में मन्वन्त के खनिजों के खनिज खनिज हैं।



सिन्ध और गुजरात के बीच मारवाड़ का थर और कच्छ का रन पड़ता है। रन 'अरब्य' का अपभ्रंश है, और गुजराती में यह अरब्य अर्थात् जंगल का समानार्थक है। कच्छ का रन पानी बढ़ने पर उथला समुद्र हो जाता है, अन्यथा वह दलदल और उथले पानी में उगा हुआ झाड़ियों का जंगल है। इस प्रकार सिन्ध और गुजरात के बीच का मीथा स्थल-मार्ग बड़ा चौकड़ है। पंजाब में गुजरात आने को सिन्ध के यज्ञाय देहली और राजपूताना या मालवा में से हो कर ही ठीक रास्ता है तो भी सिन्ध और गुजरात के बीच सेनाओं का आना जाना होता रहा है। पहली शताब्दी ई० पू० में गुजरात और मालवा पर शकों का आक्रमण सिन्ध से ही हुआ था; दूसरी शताब्दी ई० में फिर रुद्रदामा शक के राज्य में सिन्धु-सौवीर सुगच्छ पाठियावाड़) और अश्वन्ति-आकर (मालवा) के साथ सम्मिलित था। उज्जैन के उन शकों के राज्य के उत्तराधिकारी चौथी शताब्दी ई० में गुप्त सम्राट् हो गये; उनके शासन में सुगच्छ निरचय से था, और राजपूताना भी धीकानेर के करीब तक था, किन्तु सिन्धु-सौवीर के उनकी मत्ता में रहने का कोई प्रमाण नहीं मिला। छठी शताब्दी के शुरू में उज्जैन में गुप्तों का उत्तराधिकारी यशोधर्मा था, और उस की मत्ता सिन्ध में भी थी ऐसा मानने के लिए कुछ प्रमाण हैं<sup>१</sup>। उसके बाद प्रभाकरवर्धन और हर्षवर्धन ने यदि सिन्ध जीता भी होगा<sup>२</sup> तो पंजाब की तरफ से अरब लोगों के सिन्ध

१. जनेक प्रौफ़ डि बिहार ऐण्ड उडिया इंसर्चिस मार्टी (भागो संकेत-३० वि० भा० १२० सो०) १६२०, पृ० ३२७-३२८।

२. हर्षवर्धन, पृ० १२०, प्रभाकरवर्धन 'सिन्धु इतिहास'; पृ० ६०-६१, हर्षवर्धन के विषय में—अथ पुरुगोतमेन सिन्धुगजं प्रमथ्य लक्ष्मी-राक्षीया कृता। इस रूपकाल में भी सिन्धु का अर्थ देगाजात था या सिन्धु से कहना कठिन है, शायद देगाजात ही था।



उक्त मय शिन्दरान का नकद नतीजा यह निकलता है कि विन्ध्य की तरफ से गुजरात पर घढ़ाई करना सम्भाव्य न होने हुए भी बहुत कठिन है। राजपूताना और मालवा को भली प्रकार दिय्याये बिना उत्तर भारत की कोई शक्ति गुजरात पर हाथ नहीं घढ़ा सकती। उत्तर भारत के विस्तार और उपजाऊपन के कारण उस में साम्राज्य सदा स्थापित होते रहे हैं, उन साम्राज्यों को अपने दक्षिणतों हार की रक्षा के लिए विन्ध्यमेखला के घड़े अंश पर सदा अधिहार करना पड़ता रहा है, और जब जब उन हाथ में राजपूताना या मालवा आ जाता रहा तब तब अपने सामुद्रिक व्यापार और उपजाऊ भूमि के कारण धनों गुजरात को दखल करने का प्रलोभन राकता उनके लिए असम्भव होता था। किन्तु तो भी गुजरात उनके लिए सदा दूर का प्रान्त होता था। वह उत्तर भारत के साम्राज्य में सब से पीछे सम्मिलित होने और साम्राज्य के टूटने के समय मय से पहले अलग होने वाला प्रान्त होता था। मौर्य, गुप्त और वर्धन साम्राज्यों के विनाश की कहानी पूर्ण नहीं है, पर इतना बात उनमें स्पष्ट दीख आती है। दसवीं शताब्दी में कन्नौज के गुर्जर-प्रतिहार साम्राज्य में सब से पहले अलग होने वाला प्रान्त गुजरात ही था। ६१६ ई० में राष्ट्रकूट राजा इन्द्र ने कन्नौज के महीपाल को हराया, और उसके २२-२६ साल बाद हम गुजरात के तानक मूलराज सोलंकी को स्वतंत्र हुआ पाते हैं। वही कहानी फिर 'पठान' और मुसल साम्राज्यों के इतिहास में दोहराई गई।

किन्तु उत्तर की तरह दक्षिण के विजेताओं के लिए भी गुजरात चुना रहा है। सातवीं शताब्दी में सोलंकीयों<sup>१</sup>, फिर

१. नागरी प्रचारिणी पत्रिका १, पृ० २०७ आदि। धर्मेय भोस्ला जी ने इतिहास के ये प्रो छ टे छ टे टूट्टे इकट्टे किये हैं उनसे सोलंकीयों के दक्षिण से गुजरात आने का सामान्य घटन स्पष्ट सिद्ध होता है









दक्षिण से तिरहुन-मगह जाने का जो रास्ता दिया है वह  
 दावरी-तट के पैठन से माटिपती, उज्जैन, गोनर्द और विदिशा  
 कर, पौशाची पहुँचता था<sup>१</sup>। मौर्य सम्राटों के समय फिर  
 उज्जैन पच्छिमी प्रान्तों की राजधानी थी। उसके बाद शुंग सम्राटों  
 समय तो पाटलिपुत्र और विदिशा दोनों साम्राज्य की राजधा-  
 नीयों थीं, और शुंग राजाओं के पास गान्धार के यूनानी राज्यों  
 दून विदिशा में ही आते थे। ईसा की पहली शताब्दी में  
 लगभग ८० ई०) जिस अज्ञातनामा सूक्ष्मदर्शी रोमन व्यापारी  
 'एरथु मागर की परिष्कमा'<sup>२</sup> नाम से भारत के पच्छिमी समुद्र-  
 ट के समूचे व्यापार का विस्तृत वृत्तान्त लिखा है, उसके समय  
 भी मोपारा<sup>३</sup> और भरुकच्छ में व्यापार की धारा उज्जैन होकर  
 उत्तर भारत तक पहुँचती थी और तो और, कालिदास अपने  
 माल को भी विरही यत्त का सन्देश ले जाने के लिए दशार्ण देश  
 (आधुनिक डमान, पूर्वी मालवा), वेन्नवती (वेतवा) नदी, उज्जयिनी  
 और दशपुर (दामोद, मन्दमोर) का ही रास्ता बतलाते हैं।

मुसलिम जमाने में तो मालवा का रास्ता प्रायः उत्तर-दक्षिण  
 के बीच एकमात्र रास्ता रहा है। बुन्देलखण्ड - निचली उपत्यका  
 छोड़ कर—मुसलमानों के हाथ में बहुत कम रहा और पच्छिम  
 राजपूताना केवल अलाउद्दीन खिलजी के समय "पठान"  
 आदशाहों तथा जहाँगीर-शाहजहाँ के समय मराठों के पूरी तरह  
 प्रधीन हुआ। "पठान" आदशाहों के हाथ उड़ीसा का तट वाला  
 रास्ता भी न था। फलतः राजपूताना और बुन्देलखण्ड के बीच

१. सुत्तनिपात गाथा १००—१०३।

२. 'पेरिप्लस थ्रीफ दि एशियन सी' नाम से एरथु ने उसका  
 विषय-सूची भनुवाद किया है।

३. अथवा पूर्वांगक, कंकण का एक पुराना बन्दरगाह आजकल  
 डामोद जिले के बसई तालुका में।





















# चौथा प्रकरण

## दक्खिन

§ १०. पर्वत पानी और प्रदेश — भौगोलिक निरूपण

विन्ध्यमेखला और दक्खिन भारत को अलग करने वाली खा का उल्लेख पीछे किया जा चुका है। उस के दक्खिन का जोना देश दक्खिन या दक्खिन भारत है। वह विभुत एक हाड़ी पठार है, जिस का आधार विन्ध्यमेखला का अत पर्वत, और दो भुजायें पूरबी तथा पच्छिमो घाट। पच्छिमो घाट का पुगना नाम सह्याद्रि है। उन का दीवार पच्छिमो समुद्र के साथ साथ लगातार चली गई, और उसके तट स एकाएक पर उठी है। उस की अधित्यका का उत्तरी हिस्से में गंग, मध्य में मावल और दक्खिनी हिस्से में नल्लाड कहते हैं। यह अधित्यका पूरब तरफ धीरे धीरे टनी है, और टनने हुए अपने अपनी कई बाहें आगे बढ़ा दी हैं जो पूरब जाते हुए गातार टनतीं खुलतीं तथा अन्न में नदियों की घाटियों में लती गई हैं। सह्याद्रि के इस धीरे धीरे पूरब तरफ टनने से दक्खिन भारत का पठार बना है, और इसी कारण उस पठार की सब नदियों का प्रवाह पूरबी समुद्र की तरफ है। उस टाल ले खुले पहाड़ी मैदान को महाराष्ट्र लोग "देश" कहते हैं। पच्छिमो घाट की परम्परा जो उन पठार को पूरब तरफ थाने हुए बीच बीच में टूटी है, नदियों ने अपनी घाटियां उस के बीचों बीच काट कर बना रक्खी हैं। सह्याद्रि के पच्छिम जो छोटी टी नदियां एकदम ऊंचे से गिरती हैं, उन के खादर से

समान का यह नाम मध्यम-भा विनारी बनी है जो मध्य  
 अन्धम जगन्नाथ बनी गइ है । किन्तु पूर्वी घाट की  
 काल में मान का एक अन्धम चौड़ा कोना है, का  
 पूर्वी घाट में एक उत्तम वाली छाटो नदियों के  
 अन्धम नाम में आन गाली पड़ी नदियों ने भी  
 का नाम का गोटिक नद और अन्धमनी दिग्मा के  
 नाम के नाम का उत्तम दिग्मा कलिग, बीच में  
 और यह उत्तम पंगला नदी के स्थिति  
 मध्यम

अन्धम नाम की उत्तम उत्तम उत्तम उत्तम उत्तम  
 उत्तम के उत्तम उत्तम उत्तम है उत्तम उत्तम उत्तम  
 न उत्तम उत्तम उत्तम उत्तम है, उत्तम उत्तम उत्तम  
 उत्तम के उत्तम उत्तम उत्तम उत्तम, उत्तम उत्तम  
 उत्तम उत्तम उत्तम उत्तम उत्तम उत्तम उत्तम  
 उत्तम उत्तम उत्तम उत्तम उत्तम उत्तम उत्तम

उत्तम उत्तम उत्तम उत्तम उत्तम उत्तम उत्तम  
 उत्तम उत्तम उत्तम उत्तम उत्तम उत्तम उत्तम  
 उत्तम उत्तम उत्तम उत्तम उत्तम उत्तम उत्तम  
 उत्तम उत्तम उत्तम उत्तम उत्तम उत्तम उत्तम  
 उत्तम उत्तम उत्तम उत्तम उत्तम उत्तम उत्तम  
 उत्तम उत्तम उत्तम उत्तम उत्तम उत्तम उत्तम  
 उत्तम उत्तम उत्तम उत्तम उत्तम उत्तम उत्तम  
 उत्तम उत्तम उत्तम उत्तम उत्तम उत्तम उत्तम  
 उत्तम उत्तम उत्तम उत्तम उत्तम उत्तम उत्तम  
 उत्तम उत्तम उत्तम उत्तम उत्तम उत्तम उत्तम  
 उत्तम उत्तम उत्तम उत्तम उत्तम उत्तम उत्तम









दो शान्वाओं में फट गई है, जिनमें से एक मजीग के बाँधे और दूसरी दाहिने चली गई है। मजीग के उत्तर वाली शान्वाघाट शृंगला कहलाती है, और यह आगे जा कर फिर दो शान्वाओं में फट गई है, जो दोनों नान्देह के दक्षिण मीमा में पहुँच कर समाप्त हो गई हैं। मजीग के दाहिने जा बाँध चली गई है वह तुलजापुर और बरुयाणी होने हुए मुन्धवा और विरर के बीच हैरगाबाद गोलघुण्डा के पटार में जा जुड़ी है। मूमा नदी की घाटी का यह प्रसिद्ध पटार गादावरी और कृष्णा के तथा पूरबी और पच्छिमी घाट के ठीक बीच पड़ता है। उसे पच्छिमी घाट की उत्तम बाँधी का उदाहरण माना जाय या पूरबी घाट की शृंगला का एक अंग, या दोनों में स्वतन्त्र एक केंद्रस्थ पटार, माना कहना कठिन है। उसके उत्तरपूरबी छोर पर वागगल है।

पूना के दक्षिण मीमा और कृष्णा के बीच सद्दाट्टि की जो बाँधी गई है, वह भी देवगिरि अत्रिटा शृंगला और अहमदनगर-बरुयाणी शृंगला की तरह प्रसिद्ध है। उसकी रेंगा आरम्भ में मीग के दोनों बाँधों दाहरी चली गई है, दक्षिण वाली महादेव पहाड़ियाँ कहलाती हैं। उनकी मुख्य शृंगला बीजापुर के दक्षिण होने हुए कृष्णा घाटी के बाँधे बाँधे भीमा-कृष्णा-संगम तक चली गई है। यह स्पष्ट है कि अत्रिटा शृंगला ने सद्दाट्टि के साथ जैसा बॉग बनाया है, अहमदनगर वाली बाँधी का बॉग उस में अधिक नुईला और कृष्णा घाटी की बन्द करने वाली इस बाँधी का और भी नुईला है। इसी कारण दाहरी कृष्णा घाटी एक बार में बिलकुल बन्द भी है, और सोलावरी और धामा पर्वतों की तरह मुन्ध और केन नदी

१. दक्षिणपश्चिम में महादेव की प्रथम उचलें व बाँध की पहाड़ी का, जो नर्मदा की कृष्णा व सोला की बाँधी है, शान्वाघाट

पर्व। इनोकेद उत्तम सुहाव अधिक उत्तर दक्षिण है। नीचे जा कर वह सुब भी पर्वों, यदि सहायि ने पश्चिम बही हुई और दक्षिणों को दक्षिणो तरफ से भी न दबाये हुए होंगे। इस प्रकार को एक दोही मानस्यवादी के उत्तरपूर्व से घटनमा के दोरे बाँये गढ़ शिवालिक होने हुए पारल्लोके के मानने तक बली गई है। दूसरी तिर घटनमा और नलप्रना के बीच बेलगान से गोचाक होने हुए दक्षिणों गई है। और तीसरी नलप्रना और वरदानुंगमद्रा के बीच धारवाड और हुगली से गढ़ग तक पहुँच कर तीन शाखाओं ने फट गई है, जिन में से एक उत्तरपूर्व सुइगत रायचूर होकर कृष्णा-तट तक, दूसरी दक्षिण-पूर्व विजयनगर के मानने गगावनी तक और तीसरी तीसरे दक्षिण तुंगमद्रा के तट तक बली गई है।

वरदा के दक्षिण पश्चिमी और पूर्वी घाट एक दूसरे के नलदीक आते और जल में नीलनिरि पर मिल कर एक हो गये हैं। उन दोनों के नलदीक होने से दोनों के बीच मैसूर का उँवा जल-प्रवाह पलार बन गया है, जिन के पानी को तुंगमद्रा और वेदवती को जनेक धारार्य उत्तर तरफ से जाती हैं, और कावेरी पूर्वी भाँत को काट कर पूरब तरफ।

पूर्वी घाट-शृंखला का उत्तरी छोर काञ्चिनेक परिभाषा के कलुत्तार सुवलरिखा और वैतरणी के बीच नयूरभंज के पहाड़ तथा वैतरणी-आइरणी के बीच कौन्ना के पहाड़ हैं। प्राचीन परिभाषा में वैतरणी का साथ एक पर्वत में गिना जाता था, जिसका यह अर्थ है कि नयूरभंज-कौन्ना को पहाड़ियों एक पर्वत का अंश मानी जाती थी। राँची के पलार के साथ उन्हें एक पहाड़ी गर्दन जोड़नी भी है। काञ्चिनेक उन्हें विजयनगर की अपने ही दक्षिण भारत में गिना अधिक ठीक दीखता है।

महानदी गोदावरी और वेणुगंगा के बीच का पूरबी घाट का बड़ा अग प्राचीन काल में महेन्द्रगिरि कहलाता था, और अब भी उस में उस नाम का पर्वत है। महेन्द्र में पैदा होने वाली नदियों में शृषिकुल्या, लागूनना और वराभरा की गिनती की जाती थी<sup>१</sup>। गन्नाम जिले में म होकर चिलिका द्वार के दक्खिन जो नदी समुद्र में गिरती है, उस का नाम अब भी शृषिकुल्या है, बलिंगपट्टम त्रिम के मुहाने पर है वह अब भी वराभरा कहलाती है, और शशांगोल त्रिम के मुहाने पर है वह लंगलिया। महानदी और गोदावरी के पानी को बाँटने में महेन्द्र पर्वत की मध्यमा छत्तीसगढ़ पठार करता है। उस पठार का दक्खिनी किनारा, त्रिमों को के पहाड़ सूचित करते हैं, इन्द्रावती और रावरी के पानी को महानदी का मुख्य धारा के पानी से अलग करना है और पच्छिमी किनारा उसकी दूसरी धारा शिवनाथ के स्रोतों तथा वेणुगंगा के स्रोतों के बीच पड़ता है। आगे जा कर वह मैकल पर्वत से जुड़ गया है, और वेणुगंगा के उत्तरी स्रोतों तथा नर्मदा के स्रोतों को शिवनाथ के उत्तरी स्रोतों से मैकल पर्वत ही बाँटता है। छत्तीसगढ़ पठार इस प्रकार मैकल और महेन्द्र पर्वत को अर्थात् विन्ध्यदेशला और पूरबी घाट को परस्पर जोड़ता है।

महेन्द्र पर्वत के बाद पूरबी घाट की परम्परा फिर कृष्णा के दक्खिन उठी है। वही उसका मुख्य पर्वत नालमलई है, त्रिमके समानान्तर पूरव बेल्लिकोडा शृङ्खला उत्तरी पैणार के दक्खिन नगरी पहाड़ियों तक चली गई है। नालमलई का पैणार के दक्खिन बड़ा पालकोडा पहाड़िया हैं। नालमलई-पालकोडा को यदि धनुष की ज्या मानें तो उसके साथ पच्छिम तरफ परमाला





से मलय होते हुए हम महा की तरफ घूम जाते हैं। चौथे पर्वत शक्तिमान् की निरिचत शिनाख्त आज तक नहीं हुई, किन्तु मेरे विचार में वह गोलकुण्डा का पठार है। क्योंकि इन सातों पर्वतों के नाम एक पश्चिमा के पक्ष में हैं। सह्याद्रि के उत्तरी छोर से पूरव लगानार श्रृङ्ग पर्वत है। उसके पूरवा छोर से फिर उत्तर घूम कर ग्राम से विन्ध्य और पारियात्र। ये सातों पर्वत इस प्रकार भारतवर्ष के अन्दर के "कुल-पर्वत" हैं, और हिमालय और अन्य "भर्यादा-पर्वतों" में भिन्न हैं।

पोलमंडल तट की तीन स्पष्ट नोकें दक्खिन-समुद्र में बड़ी हुई हैं। उनमें से बीच की रामेश्वरम् और धनुषकोटि की हैं, जो आगे सेतुपन्थ की पट्टानो द्वारा सिंहलद्वीप या लंबा में बहुत कुछ जुड़ी हुई हैं। सिंहल द्वीप भी भारतवर्ष में सम्मिलित है। इसका उत्तरी भाग से कुछ कम हिम्मा मैदान है, और दक्खिनी भाग में बीच में समनलबन्द (समन्तकूट) और विद्रुह तलागल<sup>१</sup> पहाड़ तथा उनके आगे तरफ टाल के बाद मैदान है। इन पहाड़ों से जो नदियाँ उतरती हैं उनमें से उत्तर जाने वाली महाबेलिगंग (बुहगलगंग) मुख्य है, क्योंकि उत्तर की तरफ ही मुला मैदान है।

दक्खिन भारत के पर्वतों और पत्तियों की स्थिति समझने के बाद अब हम इनका प्रदेश विभाग कर सकते हैं। सिन्धुन भीमोलिह और भीतिह टटि में उन के निम्नलिखित विभाग चलन चलन होकर पड़ते हैं—(१) बोहल-बेरल-कट, (२) बलिा-

१. रे० एरिण्ड १ (१०)।

२. कुमलिह और कर्पाह लिह का अर्थ संस्कृत-कर्मण्य् ष्टुत्वात् ५. १.१, १-१० में पढ़ा है।

३. कर्पाह कर्पाह कर्पाह की कर्पाह।



घोलमण्डल-नट जिम में महानदी का मुहाना और गोदावरी-कृष्णा का मुहाना भी सम्मिलित है, (३) सिंहल के तट का मैदान, (४) सिंहल की अधित्यका, (५) मलय अधित्यका अर्थात् एनामनई आनमनई पर्वतों की अधित्यका, (६) मैसूर-पठार, (७) श्रीरौल अधित्यका और गोलकुण्डा-पठार, (८) सद्दात्रि की अधित्यका, जिम में गोदावरी भीमा कृष्णा की उपरली घाटियाँ सम्मिलित हैं, (९) महेन्द्रगिरि की अधित्यका जिम में इन्द्रावती शबरी के बीच का दो प्राय पन्तर भी सम्मिलित है, (१०) कृष्णा-तुंगभद्रा का विचला काँठा जो मैसूर-अधित्यका श्रीरौल-गोलकुण्डा-अधित्यका और सद्दात्रि अधित्यका के बीच घिरा हुआ है (११) पेलुगंगा-बर्गा-बेलुगंगा-काँठे, गोदावरी के विपले काँठे सहित, (१२) नागी का विपला काँठा अथवा म्यानदेश, (१३) महानदी का उपरला काँठा । इन में से तीन समुद्र-तट के मैदान, छः अधित्यकायें और चार उनके बीच घिरे ' देश ' या मैदान हैं ।

भौगोलिक और जाति-विषयक स्थिति को देखते हुए फिर इन्हीं प्रदेशों का छः प्रांतों में बँटवारा होगा है । कृष्णा-तुंगभद्रा का विचला काँठा दक्खिन भाग के दो राष्ट्र हिस्से करता है । उस के उत्तर के हिस्से में सद्दात्रि की अधित्यका पच्छिम तक गोलकुण्डा की अधित्यका बीच में तथा महेन्द्रगिरि की अधित्यका उत्तरपूरब छोर पर है । सद्दात्रि की अधित्यका के पूरबी ढाल का बड़ा ही पेलुगंगा बेलुगंगा और मध्य गोदावरी के काँठे हैं, और उस अधित्यका का उपर तक ढाल पूर्वा, पूर्वा और नागी के काँठे अर्थात् बराह म्यानदेश हैं । बोकण भी उस की पच्छिमी किनारी है । वह अधित्यका अपनी ढाल के इन प्रदेशों सहित महाराष्ट्र है जिम की पूरबी सीमा गोदावरी और महानदी का उज्जविभाजक है । महाराष्ट्र वाल अपने





जनी हैं। और जिनके व्यापार के इतिहास का संसार के आर्थिक इतिहास में आरम्भ से आज तक प्रमुख स्थान रहा है, यहाँ तक कि अनेक जातियों के इतिहास की प्रगति का रास्ता कई बार उसी व्यापार ने निरिचत किया है। चन्दन की उपज के लिए मलयाट्टि मदा ये प्रसिद्ध ग्हा है। काली मिरच, पिपली लौंग, इलायची आदि ममाले इनके पड़ोस में और भारतीय महासागर के द्वीपों और प्रदेशों में मदा में उपजते हैं। ये वस्तुएँ उन्हीं देशों में उपज सकती हैं जो भूमध्यरेखा के निकट और समुद्र से घिरे हों, और इस प्रकार जिनमें सर्दी गर्मी का विशेष अन्तर न होता हो। अत्यन्त प्राचीन काल में इन वस्तुओं की खातिर संसार के सभी सभ्य देशों के साथ दक्षिण भारत का व्यापार-सम्बन्ध बना रहा है। आजकल सभ्य संसार के जीवन की एक और आवश्यक वस्तु भी है जिसका भारतीय महासागर के प्रदेशों की विशेष उपज में उल्लेख करना चाहिए। वह है रबर और श्रीलाद पर आधुनिक जगत का तमाम गतायात निर्भर है। और श्रीलाद के पहिये जहाँ श्रीलाद की जमाई हुई पट्टियों पर ही लुढ़क सकते हैं, वहाँ रबर के पहिये साधारण रान्तों पर उहाँ नहाँ दौड़ सकते हैं, इसी कारण आधुनिक युद्ध में उनका महत्त्व श्रीलाद में भी अधिक है, क्योंकि लोह की पट्टियों का टुरन्त उखाड़ फेंके तो फिर उन्हे जमाने में समय लगना है। रबर के अन्य लैट्टियों उपयोग भी हैं। जिस पेड़ के दूध को जमा कर वह तैयार होता है वह यह पीपल गूबर और अंतरों का भेरी का है। पहले पहल वह दक्षिण अमरीका के ब्राजील देश में ही उपजता था और वहाँ ही सरकार ने उनका दोज या पौद बाहर ले जाना बिलकुल बन्द कर रक्खा था। पिछली शताब्दी ई० के निचले हिस्से में एक चतुर अंग्रेज मानी ने जिसे लंदन के शाही बन्तवशिशास्त्री बगीचे की तरफ से भेजा गया था, चोरी चोरी उसकी पौद इकट्ठी



उत्तर भारतीय मैदान उनके सामने विलकुल कंगाल  
 का पठार खनिज पदार्थों में विशेष धनी है। प्राचीन  
 बात में उसकी प्रसिद्धि रही है। गोलकुण्डा की  
 किसी उमाने में संतार भर में प्रसिद्ध था। बंगल  
 कोल्हार की खानों आजकल भी काम  
 दक्षिण के पहाड़ों की भूगर्भ-रचना बहुत ही प्राचीन होने  
 अन्य उनके प्रकार के खनिज उनमें हैं जो हिमालय में  
 हैं। इनकी 'सफेद कोयले' की सम्पत्ति भी कम नहीं  
 और बन्दई के बीच कार्ले की गुफाओं के पास के प्रपातों से  
 के पड़ोस की रेलगाड़ियों के लिए बिजली निकाली जाती है  
 शिवसमुद्रम् के प्रपातों की बिजली से ही कोल्हार की खानों  
 सब कारखाने चलते तथा नैतूर और बेंगलूर को बिजली नि  
 है। भारतवर्ष के प्राचीन अर्थशास्त्री कौटिल्य ने स्थल की र  
 के साथ जल की खानों की भी गिनती की है। उनके समय  
 ( ३२५ ई० पू० ) पहले से पाएट्य देश ( द्रविड देश की अन्ति  
 दक्षिणों नोक, मदुरा विरनेवली विले ) और लंका के समुद्र स  
 शंख, मोती और नूंगे निकाले जाते थे, और आज तक भी  
 निकाले जाते हैं।

भारतवर्ष की भावी व्यावसायिक उन्नति में विन्ध्यनेमला और  
 दक्षिण-पठार की खनिज सम्पत्ति विशेष महापद होगी।

§ १२. पथनद्विती और ऐतिहासिक पर्यालोचन।

विन्ध्यनेमला के जिन भागों का हम पर्वत श्रेण्य पर आये हैं  
 वे उत्तर भारत को दक्षिण में जोड़ते हैं, इमलिए उनका दक्षिणी  
 और दक्षिण भारत में आकर नमान होता है दक्षिण के अन्त  
 १ अर्धगात्र १, ६-सन्ने का लक्षण।



काल से दक्षिण भारत के उत्तर-पश्चिमी छोर को व्या  
 रास्ता इन्हीं प्रकार काटना रहा है। नांगरा या शूर्पारक  
 काल में एक प्रसिद्ध 'तीर्थ' ( बन्दरगाह ) रहा है,  
 जहाँ नक व्यापारियों के मार्ग ( काफिले ) इन्हीं रास्तों  
 जाते थे। नामिक के पड़ोस में महाद्वि के नानाघाट में  
 घाटन और सूर्य राजाओं के अभिलेख मिले हैं, जिस से  
 होता है कि नानाघाट उन समय चलते रास्तों पर था; श  
 प्राचीन रास्ता वहीं महाद्वि को लांघना था। शिवाजी के  
 सम्भाजी के समय बादशाही सौते उन के पड़ोस के यज्ञ  
 से जाया करती थी, और आजकल जलगाँव में बन्दरों तक रेत  
 का भी ठीक वही रास्ता है। किन्तु बड़ोदा-बन्दर वाले दुहड़ों  
 की तरह वह भी दक्षिण भारत के केवल एक छोर में  
 सुधरता है।

प्रयाग में दुन्देलनगर के आन्ध्र नर्मदा की उपरती घाटी  
 ( उपरतपुर ) हीन वेरुगाँव के उपरले काँठे ( नागपुर ) में जो  
 विन्ध्य-मार्ग उतगता है, वह आगे गादावरी-काँठे के मायपूरी नद  
 पर निकलने हुए दक्षिण के एक बड़े सिनारे को छूट लेता है।  
 गोदावरी कुन्ना-काँठों के आन्ध्र प्रदेश में दुमरी-नीमरी रातावरी  
 डों के इदवाकु सत्रियों के अभिलेख पाये गये हैं। निम्नर से  
 ये इदवाकु अभिलेख आरक उत्तरी कोराप में उनी गली आन्ध्र  
 देश तक आये होंगे। किन्तु उन गली के सिनारे पर नैहल  
 और बन्दर के उपरल में 'धरे पड़े' हैं, इन्हीं कारण वह नदी  
 उतनी पक्का नहीं रा।

1. लखि बहू . प में दगाएगाड के बरं में प्राकः लंरं नन्द का  
 य ग होता है।



पूर्वी नट के साथ साथ आने वाले जिस रास्ते का हम विन्ध्यमार्गों के प्रसंग में उल्लेख कर आये हैं, वह एक बड़ा राजपथ है, और उसे विन्ध्य-मार्गों के बजाय दक्खिन भारत के मार्गों में ही गिनना चाहिए। यह भारतवर्ष के सब से अधिक घनत्व राजपथों में से एक है। उस रास्ते जाने वाली सेनाओं ने जो कई बार भारतवर्ष का इतिहास बनाया है, उसका उल्लेख पीछे कर चुके हैं। आजकल उस रास्ते के साथ साथ नट पर एक लम्बी नहर भी चली गई है, जिसके अनेक अंशों में स्टीमर चल सकते हैं।

पूर्वी नट के उम रास्ते की तरह दक्खिन भारत के उत्तरी नट के रास्ते का भी पहले उल्लेख कर चुके हैं। यह वह रास्ता है जो विन्ध्यमंथला और दक्खिन की विभाजक रेखा में से सूरत से कलकत्ता तक गया है।

अब हम दक्खिन भारत के खास अपने, उसके अन्दर के, उन मार्गों की ओर ध्यान दे सकते हैं जिनमें सेनाओं, व्यापारियों, उपनिवेश-स्थापकों और मध्यता के प्रवाह पहले रहे हैं। वे रास्ते उमकी चौड़ाई के आधार पर उसकी नदियों की दिशा में हैं। सबसे पहला वह जिसे मनभाइ से मसुलीपट्टम तक का आजकल का रेलपथ सूचित करता है। दूसरा, उमी प्रकार, पूना से कांठी-वरम्; तीसरा गोआ में तजोर-नागपट्टणम्; चौथा, कालीकट से रामेश्वरम्; और पाँचवां कोल्लम से तुनकुट्टि<sup>१</sup>। इनमें से पाँचवां तो एक छोटा सा स्थानीय मार्ग है, हमने उमकी गिनती बाकी चार के साथ केवल इस कारण की है कि वह भी वही की दिशा में है। चौथा जो पल्लपाट होकर गुजरता है, सदा

१. विगादा न घेड़ी कर-नागपट्टम्।

२. तुनगाळी कर-तुनकुट्टि।



















# अफरणा पाँचवाँ

## सोमान्त की पर्वतनालायें

§ १३. हिमालय की पर्वतशृङ्खलायें और तिब्बत

भारतवर्ष की आधी परिमना जिन पर्वतनालाओं ने की है, उनमें से मुख्य हिमालय है। इन पर्वतों की सीमाओं की विवेचना में ही भारतवर्ष की उत्तरी सीमा भी स्पष्ट होगी।

सिन्ध-गंगा नैदान के उत्तर लगावत हिमालय चला गया है सिन्ध और ब्रह्मपुत्र दोनों नदियाँ हिमालय के उत्तर नरक पठे

पठे एक दूसरे के बहुत नजदीक निकल कर एक पश्चिम और दूसरी पूरब रुक करके उनका उत्तरी पैरा करते हुए अन्त में

दक्षिण फिर कर भारतवर्ष के नैदान में उतरी हैं। जहाँ जहाँ दक्षिण में उतरी हैं, वहाँ उनही धारायें ही आधुनिक भूगोल-शास्त्रियों की परिभाषा में हिमालय की पश्चिमी और पूरबी

सीमायें हैं। अर्थात् सिन्ध-ब्रह्मपुत्र ने हिमालय की पश्चिमी और पूरबी सीमा की है। काश्मीर, गौरीशंकर, धौलागिरि, नन्ददेवी, पर्वत आदि अनेक प्रसिद्ध पहाड़ हिमालय की शृङ्खला में

अन्तर्भूत हैं। मुगल रूप में हिमालय का शृङ्खला में अनेक अनेक ऐसे पहाड़ों की शृङ्खला के लिए हिमालय कहा है।

इन शृङ्खला के नीचे जो छोटे पहाड़ों की परम्परायें हैं और जिनके हिमालय की निचली भूमि पर बाल बरसि

हिमालय के पश्चिम में अनेक नदियाँ हैं। वहाँ छोटे छोटे हिमालय के पहाड़ों के बीच में नदियाँ बहती हैं। इन नदियों में से कुछ नदियाँ हैं। जिनके

पहाड़ों में से उत्तर में बहती हैं। इन नदियों में से कुछ नदियाँ हैं। जिनके

















के दाहिने छोर के साथ सटी हुई दक्खिनमूरव चली गई है। लेह के चौगिर्द प्रदेश लदाख कहलाता है, इसलिए इस शृंखला का नाम भी आजकल के भूगोलवेत्ताओं ने लदाख-शृंखला रक्ता है। हानले के उत्तर जहाँ सिन्ध नदी खरा दूर पच्छिम-दक्खिन बही है वहाँ उसे पार कर वह फिर सिन्ध के बायें चली आई है, और आगे गारतंग के बायें बायें सतलज घाटी तक जा पहुँची है। सतलज को राप्ता देकर रावत ताल के दक्खिन फिर उस की एक दो छोटी चोटियां उठी हैं, और मान नरोवर के दक्खिन गुरला मान्याता भी उसी के ताँवे में है। उसके आगे वही शृंखला ब्रह्मपुत्र के बायें बायें कांचनजंघा के उत्तर तक लगा-तार चली आकर चुमलारी चोटी पर हिमालय में आ मिली है। उसके एक तरफ ब्रह्मपुत्र है, और दूसरी तरफ घाघरा गंडक और कोसी के मूल स्रोत जो सब उसी में हैं।

हिमालय की गर्भ-शृंखला और लदाख-शृंखला के बीचो-बीच खड्गकर नदी से कर्णाली नदी ( घाघरा को उपरलीघारा ) तक चोटियों की एक और परन्तरा भी हिमालय की पीठ पीछे चली गई है, जिसे खड्गकर शृंखला कहते हैं। गुरला मान्याता के ठीक दक्खिन कर्णाली के दाहिने हिमालय की पीठ से फट कर काली की तीनों धाराओं काली, धौली गंगा और गौरी गंगा—के स्रोतों को कर्णाली और मनलज के स्रोतों से, तथा झलखनन्दा की दो मूल धाराओं—धौलीगंगा और विष्णुगंगा—और भागोरथी की उपरली धारा जाह्नवा के पानी को मनलज के पानी में चोटनी हुई शिपकीं धरे पर वह मनलज घाटी के ऊपर जा पहुँची है। विष्णुगंगा के पूरव सुप्रसिद्ध कामेत पहाड़ उमा में है। सतलज के पच्छिम सिन्धी नदी और सिन्ध में जाने वाली हानले नदी के बीच वही उत्तविनाजक है। सिन्धी की पूरवी धारा परे के बायें



पाटी के उत्तर बराबर चली गई है । उसे कैलारा शृंखला का ही पूरबी बड़ाव कहना चाहिए ।

कैलारा-शृंखला के भी उत्तर, किन्तु केवल उसके पच्छिमी अंश के बराबर, कारकोरम-शृंखला है, जिसमें संसार के सब से भारी गल रहते हैं । हुंसा नदी के उपरले प्रवाह के दाहिने तरफ शुरु होकर उसे बीच में रास्ता देते हुए हुंसा के दाहिने से वह योढ़े दक्खिन झुकाव के साथ पूरब बढ़ कर कैलारा-शृंखला को आ लगी है । वहीं वमका मय से बढ़ा तथा संसार भर में दूमरे दर्जे का पहाड़ पगेरी ( गौडविन झौस्टेन ) है । पगेरी के आगे वह एक लहर में, पहले दक्खिन और फिर उतर झुकावों, मुबरा और शियोऊ का रकम दरिया में पानी बाँटती हुई पूरब गई है । शियोऊ पाटी के पूरबी छोर में पंगोरु के पूरब की न्यक मील की मीथ में बुद्ध दक्खिन झुकाव कर फिर वह लगातार लगभग पूरब चली गई, और पन्न में ब्रह्मपुत्र के तोन के करीब दो सौ मील उतर तिब्बत के पाह-यूक की मोने की खानों के पड़ोम में टल गई है ।

यह माने मैदान; और क्योंकि तिब्बत का मैदान पहाड़ के इतर हो है, इसलिए यह का ठीक अर्थ है पठार । पाह-यूक तिब्बत का मुख्य भाग है, और वह एक सपाट वृद्धीन, ऊँड़ पठार है । ब्रह्मपुत्र-पाटी के उत्तरी छोर ज्यॉन् कैलारा और बेनजिन-शृंखला-शृंखलाओं के उतर और क्युनलुन-शृंखला के दक्खिन, निम्न इ स्थान की मीथ में शुरु कर आस्तान के पूरबी छोर की मीथ के उत्तर आगे पूरब कोरानौर के करीब यह बंद चला गया है । मों के पूरबी छोर में खान की मुख्य नदी पाह-यू, और कम्पुज और वमका के नदियों में हीर और मानवीन के झोंत हैं ।

१. गल = ग्लेशियर बुमाईनी एकर

२. खान और मिडा के संज्ञान पर ही पाह-यूक का अर्थ है ।







स्थिति का जो प्रभाव होता है उस पर पीछे विचार कर चुके हैं।  
 किन्तु नागा और अयन्तिया पहाड़ों के बीच उतार है जहाँ कर्ण  
 और घनमिरी नदियों ने अपनी घाटियाँ काटी हैं जिनके द्वारा सुर  
 काँठे से आस्तान तक रास्ता बनता है। इन्हीं घाटियों के कार  
 गारों और खासी पहाड़ सीमान्त के पहाड़ों से अलग हैं, औ  
 हन उन्हें आस्तान के अन्दर के पहाड़ों में गिन सकते हैं।  
 पूरबी सीमा के कम ऊँचाई के पहाड़ों का ताँता भारतवर्ष की  
 धरना से अलग करता है, और चटगाँव के तट से अराकान के  
 तट तक वह तुच्छ बाधा भी नहीं है। विद्विन और इरावदी  
 नदियों के उपजाऊ लुगन और तंग काँठे धरना के उत्तरी और  
 तक चले गये हैं, जिनके और सुरना-अरुण-काँठों के बीच बड़ा  
 अरबधान नहीं है। पटुव ही अर्धिम बरमान के कारण इत  
 सीमान्त के रास्ते हित प्रकार दुर्गम हैं, और लोहित के काँठे से  
 विद्विन या इरावदी के काँठे तक जाने का रास्ता हित प्रकार है,  
 उसका उल्लेख भी पीछे कर चुके हैं।

आस्तान से चीन का दक्षिण-पच्छिमी मुश्नान प्रान्त दूर  
 नहीं है, और मणिपुर से सीधे पूरब और आगे नदियों के काँठे  
 के साथ दक्षिण स्थलमार्ग से भी भारतीय प्रवासियों और उप  
 निवेश स्थानों का प्रवाह स्थान, अरुण, चन्ना (आमान)

### ३१५. दरदिस्तान और दोलौर

हमने गंगा के साँव वाली सिनालय की हिमरेखा को भारत  
 की उत्तरी सीमा कहा है। किन्तु पच्छिम तरफ भारतवर्ष  
 सीमान्त रेखा गंगा पर्वत तक उस हिमरेखा के साथ नहीं  
 की, पटुव चिनब का अन्तम पच्छिमी धाराओं के साथ  
 न के ठीक बाद अमानाथ के नामने लोचोना पर हिमरेखा  
 १. उपनिवेश का दर दुर्गम है २. मकरन्द ५० ५० १८१



पार कर मिन्ध-पाटी की तरफ उलटपूर्व बढ़ती है—कारण  
 ही विष्णु का पश्चिमी द्वार था तथा और उसके पश्चिम  
 गीर के उत्तर बनगली मिन्ध पाटी में जा कर बढ़ने का वह  
 उद्वेग का भाग है। ध्यान रहे कि हम भारतवर्ष की स्थाभा  
 व और ऐतिहासिक मीमा को ध्यान रखें, न कि आंतराल  
 घेड़ों के भारतवर्ष में जा प्रदेश या जुड़े हैं उन की। कृष्णगंगा  
 जेहमम की उत्तरी शाखा ) की पाटी में मिन्ध का पाटी तक  
 बढ़ लोग रहते हैं, और मिन्ध पार गिन्गित और दू का जायवा  
 पाटियों की उन्हीं की हैं। दक्षिण की पूर्व मीमा आत  
 म डोत्री-ला में उलटपूर्व स्वभाव में एक जाकर वहाँ में मिन्ध  
 छोड़ की उत्तरीभाक्त स्वभाव श्रृंखला के भाग पश्चिम  
 मती और उन्हीं श्रृंखला के भाग गिन्गित मगम में  
 जैसे कि मिन्ध का पार कर हम के साथ निरन्तर आती  
 । वहाँ हम के उत्तर मगम और कैलाश श्रृंखलाया  
 कीव काभी । कात्तिमान ) या श्रृंखला निरन्तर है जो  
 उत्तर की पश्चिमी भाग का मूर्तिव कला है । कात्ति । के  
 उत्तर में पश्चिम का उत्तर दूर का भाग मगम का  
 जो दिल के सामने उलटपूर्व का भाग मगम का पार का  
 है मीमा का मगम का पार कैलाश मगम का उत्तर म  
 मगम का दूर का भाग के दूर बढ़ने का भाग मगम का  
 पश्चिमी भाग का भाग का भाग का भाग का भाग का  
 कात्ति मगम का भाग का भाग का भाग का भाग का  
 कात्ति मगम का भाग का भाग का भाग का भाग का  
 कात्ति मगम का भाग का भाग का भाग का भाग का  
 कात्ति मगम का भाग का भाग का भाग का भाग का  
 कात्ति मगम का भाग का भाग का भाग का भाग का  
 कात्ति मगम का भाग का भाग का भाग का भाग का











बचाये रखी है' । इसलिए हमें भारतवर्ष की स्वाभाविक सीमाओं को अफगानिस्तान के स्वतंत्र राज्य में और यदि आवश्यक हो तो उसके पड़ोस में भी अंकित होना होगा ।

हिमालय की हिमरेखा को खोजी जोन पर पार कर सिन्ध की घाटी में सीमा की घाटी तक, वहाँ से कश्मीर ( सरीकोव ) पर्वत के साथ नागद्वार ( रंगकुल ) तक, फिर वहाँ से पच्छिम रंगकुल पामीर के साथ कश्मीर देश के शिमानान और रोरात जिलों को दक्खिन छाड़ने हुए आमू नदी के उत्तरी मोड़ के उत्तरी छोर तक हम भारतवर्ष की सीमा अंकित करके पहुँचे थे, जहाँ बदख़शा का प्रान्त हमें सामने नीचे दीख पड़ा था । उसी पीठ हिन्दूकुश पर्वत है जो उसके दक्खिन लगानार बना गया है । उस पर्वत की धार धार पूरब में पच्छिम चलने हुए अब हम उसके दोनों तरफ के प्रदेशों का दिग्दर्शन करेंगे ।

आमू के मोड़ के अन्दर बदख़शा का जो उत्तरी हिस्सा है उसकी पनाबट पामीर की सीमा है । उसकी पच्छिमी सीमा बदख़शा की केंद्रिक नदी कोहगा है, जिस के तट पर उसकी राजधानी कैशाबाद बसी है । पामीर-बर्षा के सामने हिन्दूकुश के नीचे दक्ष प्रदेश की गिन्जिल पट्टा थी जिसका गन्ना बंगोलीन आदि जंगलों में था । बंगोलीन में पच्छिम हिन्दूकुश की कोशन पर अगली प्रविष्ट थीर वहाँ मान लाग है । उससे नीचे

१. वेल्स का मतलब करना ठीक नहीं है । जिस देश की विदेशी शक्ति बनने की शक्ति न हो, वहाँ पर देश विदेश के साथ समान रूप से सन्धि-विग्रह हो सकता है, उस मतलब नहीं करे जा सकता । अतः हिमालय की उत्तमक की सन्धि ( १८५३ ई० ) के बाद से १८५९ ई० तक मतलब न था ।









































और व्यास का सिन्धु-मनसरोवर के घेरे में। व्यास के उपरले स्रोतों के दिग्मय प्रदेश का नाम कुल्लू ( कुलून ) है। स्पष्ट है कि वह लाहूल के दक्षिण और चम्बा के पूर्वदक्षिण है। कांगड़ा और मण्डी से उसे धौला धार अलग करती है। उसकी पीठ पर व्यास के स्रोतों वाली हिमालय की बड़ी शृङ्खला है।

हम देख चुके हैं कि उम शृङ्खला की परबी तरफ चन्द्रा और व्यास की उपरली धाराओं के बराबर स्थानी और परे की धारायें बनी गई हैं जो मनसरोवर में मिलती हैं, तथा चारा लाचा स्रोत के उम तरफ चन्द्रा और स्थानी से उलटी—उत्तरपश्चिम—दिशा में ब्रह्मचर नदी उतर गई है स्थानी की घाटी और लाहूल-कुल्लू के बीच उतर में दक्षिण हिमालय की गर्भ-शृङ्खला है। स्थानी-घाटी मनसरोवर की तिम उपरली घाटी में जा निकलती है, उसे कनौर या बराहर कहते हैं। अन्यत्र मैंने लिखा है कि वही प्राचीन हिमालय देश है। कनौर के बीचोबीच हिमालय की गर्भ-शृङ्खला गुबरी है, इसलिए कनौर घाटी गर्भ-शृङ्खला के अन्दर की है। उसे भीलभी शृङ्खला की मनसरोवर घाटी अर्थात् मुचेंव में धौला धार अलग करती है। कुल्लू की पूरव पीठ में कनौर की तरफ फिरते समय हिमालय की गर्भ शृङ्खला ने भी छन्द धार नाम की अपनी एक बौटी आगे बढ़ा दी है, जो व्यास और मनसरोवर के घाटियों का घाटनी अर्थात् कुल्लू को कनौर में अलग करती है। इस धार पर पोन पर्वतों नाम की एक श्रृंखला है तिमहें एक तरफ पोन नदी का पानी स्थानी में, और दूसरी तरफ पर्वतों का पानी व्यास में जाता है।

कनौर की पीठ पर ब्रह्मचर शृङ्खला है जो स्थानी की पूरवी धारा परे के बायें बायें उधो तरह बनी गई है तिम हिमालय

१. पृ. ११० २. पृ. ११० ३. (१०)

४. पृ. ११० ५. पृ. ११० ६. पृ. ११०







करी श्रोमोंग को रास्ता देते हैं। धौली गंगा के पूरब दूनागिरि और नन्दादेवी पहाड़ हैं।

रामगंगा और उमड़ी पूरबी घाट कोमी गंगा की पूरबी बाँह बिहर के नीचे से ही निकली हैं। उमड़ी घाटियाँ, उनके ऊपर बिहर का श्रॉल विहारी गन्ध, तथा त्रिशूल, दूनागिरि और नन्दादेवी की घाटियाँ कुमाऊँ (कुमाँवन्त) के पच्छिमी छोर का मूलिन कहती हैं। उमड़ा पूरबी छोर काली या शाब्दा नदी है जिसके बाद नेपाल राज्य शुरू होता है। अलमोड़ा की समशीत बन्नी कोमी की घाटी के ऊपर है, वहाँ से २० मील ऊपर चल कर बजोग्यर पर मग्जू मिलती है जो पच्छिम में पूरब कुमाऊँ के बीचों बीच बह कर काली में मिली है—टीह थैमे ही जैसे कर्ण्डज-मगमौर के बीच बह कर गिरि जमना में जा मिली है। मग्जू का श्रॉल बिहर के अर्थात् गंगा के प्रथम क्षेत्र के केवल तीन मील पच्छिम है, और वहाँ से धौलीगिरि तक मरा हो सी मौल अर्थात् में तमाम पापरा का ही प्रथम-क्षेत्र है। उमड़ी कई भागों का नाम मग्जू है, पना नदी हिम के नाम से पापरा का भी भाग मग्जू कहते हैं। ऊपर की तरह ही पापरा के श्रॉल गंगा का प्रथम देन वाला उद्गच्छ-श्रॉलना के और ऊपर अलम-श्रॉलना के कुवि-बहरी पहाड़ में हैं, और प्रचार मनबद्र और ब्रह्मपुत्र के श्रॉलों तक पहुँचते हैं। पापरा के कई श्रॉलों और मनबद्र और ब्रह्मपुत्र के अनेक श्रॉलों के बीच अलम श्रॉलना के केवल तीन तीन बार बार मील के घाटों का व्यवधान है। पापरा की इन उँचे श्रॉलों में चाने काली घाटियों में म कुमाऊँ में केवल काली की शाखायें गीरी-गंगा, शैली-गंगा और अरु काली हैं जो तीनो उद्गच्छ-श्रॉलना

१. गी ( १२५४१ ) = १२५४ ।

२. अलमबद्र का क्षेत्रपाला से निकल















कहलाती है। इन नदियों की घाटियां तिब्बत के चाङ्ग प्रान्त में पहुँचाती हैं जो डरी के पूरव तथा ल्हासा वाली नदी उइ-चु के पच्छिम तक ब्रह्मपुत्र घाटी का नाम है। चाङ्ग का मुख्य नगर शिगर्वे है, और चाङ्ग में से गुजरने के कारण ही ब्रह्मपुत्र चाङ्गपो (चाङ्ग-वाला) कहलाता है। ल्हासा का प्रान्त उइ अर्थात् मध्यदेश है, और इसीलिए उसकी नदी उइ-चु अर्थात् मध्यदेश का पानी कहलाती है। ल्हासा के दक्खिन भूटान के उत्तर की ब्रह्मपुत्र घाटी न्योत्सा अर्थात् दक्खिन देश है।

✓ ए. सिक्किम, भूटान, आनामोत्तर प्रदेश:—नेपाल के उत्तर-पूरबी छोर पर काञ्चनजङ्घा है। उसके पूरव हिमालय का पानी गङ्गा के बनाय ब्रह्मपुत्र में जाता है। तिस्ता की घाटियों का प्रदेश जो नेपाल के ठीक पूरव लगा है सिक्किम है। उन्की के निचले छोर में दार्जिलिङ—तिब्बतियों का दोर्जे-लिङ या बज्रद्वीप—है। सिक्किम के पूरव भूटान—तिब्बतियों का डुगयुल, बिजली का देश—है। उसमें ब्रह्मपुत्र में मिलने वाली अनेक धारायें फैली हुई हैं। उनमें से पच्छिम से पूरव तोरसा उर्क अमोचू, रइदाक उर्क यिन-चू, संतोश और मनास हिमालय की गर्भ-शृंखला से निकली हैं। मनास की एक धारा तो और ऊपर से आई है। इसीलिए इन नदियों की घाटियों से तिब्बत को सीधे रास्ते हैं। दार्जिलिङ, कालिम्पोङ और गङ्गोक (सिक्किम के मुख्य नगर) से अमोचु की घाटी अर्थात् चुम्बो घाटा द्वारा हिमालय की ठीक जड़ तक पहुँच सकते हैं। उनके ठीक उत्तर तरफ ब्रह्मपुत्र में दक्खिन से मिलने वाली न्यङ नदी की घाटी है जिनमें ग्यान्च शहर है। आज-कल भारत वर्ष से ल्हासा जाने वाला मुख्य रास्ता यही है। ग्यान्च से शिगर्वे उत्तरपच्छिम उसी न्यङ और ब्रह्मपुत्र के संगम के



मे ऊपर खाद टोना चढ़ा ही कठिन होता है. इसलिए किसान अपने हाथों से खरी खरी एक एक बगारी में बांधते हैं, और उन्हें बांध-बांधो से बचाने के लिए सब्य अपनी जान दयेही पर सब घर उन्ही खेतों में सोते हैं । इसी कारण इन पाटियों में रात के समय नहीं बदलपटल राती है । और की गहवाल के पानी कीहा बनते हैं और 'बीदा' खा जाय तो कई बार गांव की लड़कियाँ भी दुरुवा बनती हुई उसे भगा जाती हैं ! फिर पाटी में आपन मुखन पानी का डोपार पर से रेतो तक पहुँचाना भी एक बड़ी समस्या होती है । इस समस्या को हल करने में भाग्यवश से पाटियों ने लसी योग्यता दिखाई है कि उसे देख आधुनिक इंजीनियर दोनों तरह की सुनी बसाने हैं । प्रवालों की खरी डोपार पर खींच कर बसावही बांधो से से दूर दूर की पाटियों तक उन्हें ले गये हैं । लौकी शकरी इन्हे अपने से बारीकी इंजीनियर मुखन बरतीर पाटी की शकरी इन लोगों में बदल ही थी, और एकदम उसकी खज कई मुता बड़ा ही थी । बीदा, कुन्ड, कुन्ड, कुन्ड खाद सभी देगे में बीदा ही बसावही से तिकाइ के प्रत्यक्ष कार्य गये हैं । बलाक-बदला लका की 'बीदा' लो की आधुनिक इंजीनियरों ने भाग्य बदला ही है । फिर इन सब उपकरणों का बसावही भी खाद पर बहुत बल जाली बन बसता । दूध के जाली लो की खजान राती है खाद होता है, खाद बस लो की लो लो से उर्दी खाद खाद, और बहुत मुता खेलायो पर बहुत खाद मुकद मुकद खींचे जाते हैं ।

सिन्धु खेतों में सब्य के खेदल सभी और खेतों के खेतों के लिए खाद का बहुत दु बलन में खेदल बहुत है । मेरे लालको के लिए मुता खाद ही बसती है । खेत पर ही खाद के लिए खाद बसावही, बसावही, बसावही, बसावही

करमीर के अनेक फल प्रसिद्ध हैं; कुल्लू, कुमाऊँ आदि में भी वे सभी पैदा हो सकते हैं। जंगली सेब, अंगूर और दाइमी (अनार) कुल्लू, क्यूँठल, कुमाऊँ आदि में प्रायः सब जगह खुदराई हैं। यहाँ के सेब नासपाती के नये घगाँचे अब करमीर काबुल का मुकाबला करने लगे हैं। अम्वरोट, खुमानी आदि भी प्रायः सभी पहाड़ों में सुगमता से उपजते हैं। पश्चिमी शताब्दी ई० पू० में पाणिनि मुनि ने अपने व्याकरण में 'कापिशायन' शब्द की सिद्धि के लिए एक सूत्र बनाया है, जिसका उदाहरण दिया जाता है—कापिशायनी द्राक्षा। यद्यपि वह उदाहरण पीप्ले के फलों का है, तो भी यह बहुत सम्भव है कि वह पाणिनि के समय में चला आता था, क्योंकि पाणिनि के समय भी कापिशी की कोई चीज खरूर बाजार में आती रही होगी जिससे कापिशायन शब्द का चलन हुआ। इस प्रकार कपिश और उसके पड़ोसी देशों के अंगूरों और अन्य फलों का इतिहास कम से कम पाँचवीं शताब्दी ई० पू० से भी पहले का है। यदि हम इस बात पर ध्यान दें कि वैदिक वाङ्मय में वागवानी का उल्लेख नहीं मिलता, 'आरामो' और 'उप्यानो' (उद्यानों) की बहुतायत पहले पहल हम जानकों की पहातियों अर्थात् आठवीं-सातवीं शताब्दी ई० पू० के करीब समय में ही पाते हैं, तो कहना होगा कि भारतवर्ष में वागवानी के आरम्भ के साथ ही पहाड़ी प्रदेशों में भी फलों की कृषि की जाने लगी थी।

स्यनी और वागवानी की उपज के अलावा हिमालय के जंगलों की उपज की भी बड़ी सीमा है। अनेक प्रकार की औषधियों के लिए तो यह महा म प्रसिद्ध रहा ही है किन्तु चांद, देवदार आदि ऐसे अनेक पेड़ हैं जो हिमालय की विभिन्न ऊँचा











...पार के 'हिन्द' को या उसके बड़े भाग को सुवर्ण  
कहते थे, और सुवर्णभूमि के साथ भारतवर्ष के पच्छिमी  
पूरबी तट के व्यापार का इल्लेख जातकों की कहानियों ( ७  
६ वीं शताब्दी ई० पू० ) में पहले पहल मिलता है ।

किन्तु भारतवर्ष का सुवर्णभूमि से सम्यन्ध केवल जलमार्ग  
से ही न था । उसके पूरबी तट की घटियों से पहले नदियों के  
उपरले काँठों में बस्तियां बन चुकी थीं इसलिये भिन्न होता है कि  
स्थलमार्ग से भी उपनिवेश-स्थापकों की धारा जाती थी । उन  
स्थलमार्गों की स्पष्टता तीन दिशाओं हो सकती थी, एक चटगाँव  
से तट के साथ साथ, दूसरे सुरमा काँठे से मणिपुर लॉघ कर  
चिन्दविन काँठे में और वहाँ से आगे पूरव या दक्खिन, तीसरे  
आसाम से पनकोई-शृंगला के पच्छिमी या पूरबी छोर से चिन्द-  
विन या इरावदी-काँठे में और आगे पूरव या दक्खिन । आसाम  
के पूरव तरफ़ तिब्बत-पठार के दक्खिनपूरबी छोर में इगवदी  
साल्वान, मेकौङ और लाल नदी ( मोङ्ग कोई ) की उपरली घाटियां  
एक दूसरे के बहुत नजदीक हैं ; उन्हीं नदियों के निचले काँठों से  
बरना, खान कन्जुज और आनाम तक के प्रदेश अर्थात् समूची  
सुवर्णभूमि घनी है ।

भारतीय जाति और सभ्यता में मुख्य अंश आर्य है, और  
इन देशों में स्थलमार्ग से भारतीय प्रवाह तभी आ सकता था  
जब पहले इनके रास्तों की जड़ में अर्थात् आसाम और पूरव  
बंगाल में आर्य सत्ता पूरी तरह स्थापित हो जाती । भारतवर्ष  
की जनजात-विषयक स्थिति की इन आगे आलोचना करेंगे,  
और उससे स्पष्ट होगा कि क्यों इन प्रदेशों में आर्य सत्ता  
उ हिन्दुराज्य या पच्छिमी विन्ध्यनेत्रला से पीछे पहुँची ।  
यों भी हो, बंग अर्थात् पूरव बंगाल में पाँचवीं शताब्दी ई० पू० से  
ले आर्य सत्ता उत्तर स्थापित हो चुकी थी, क्योंकि

अ. पूर्वी स्थलमार्ग;—आसाम और बंगाल से स्थल द्वारा चीन तथा हिन्दचीनी जाने वाले रास्तों को हम पूर्वी सीमान्त-मार्ग कहते हैं। भारतवर्ष और हिन्दचीनी के प्राचीन इतिहास में उन रास्तों का बड़ा महत्त्व रहा है। जैसा कि हम आगे देखेंगे हिन्दचीनी प्रायद्वीप की जनता में चीनी-तिब्बती अंश मध्य काल में—नौवीं दसवीं शताब्दी ई० के बाद—आया है। उससे पहले यहाँ छोटा नागपुर के मुंडा और सन्ध्याल लोगों या खासी-जयन्तिया पहाड़ों की जातियों की मगोत्र जातियाँ रहती थीं, और इसी सन् के एक दो शताब्दी पहले से उन में भारतीय रुधिर मिलता तथा भारतीय रंग पड़ना रहा था, यहाँ तक कि स्वयं चीन वाले हम मगोत्र प्रायद्वीप को भारतवर्ष का हिस्सा मानते थे। पाँचवीं शताब्दी ई० के पूर्वार्ध में चीनी इतिहास लेखक फन-ये ने भारतवर्ष का विस्तार काशोक या काकुल से पान-की अथवा मानाम तक लिखा है<sup>१</sup>। दसवीं शताब्दी ई० में रोमन भूगोल-लेखक टालमीने हिन्द-चीनी प्रायद्वीप को 'गंगा पार का हिन्द' कहा है और उसमें स्पार्तो के जो नाम दिये हैं वे मग मंछत के हैं। 'गंगा पार के हिन्द' के मग में पूर्वी भाग अम्पा में भी दसवीं शताब्दी ई० के संस्कृत अभिलेख मिले हैं जिनमें वहाँ के 'भीमार यंरा के हिन्दू राजाओं का उल्लेख है। हम इस पर अर्थ है कि दसवीं शताब्दी ई० के अन्त तक हम प्रायद्वीप के पूर्वी छोर तक भारतीय सत्ता न केवल पहुँच प्रयुक्त हम मी पहुँची थी, उसके पश्चिमी छोर में उसका प्रवेश कई शताब्दियाँ पहले हुआ होगा। भारतवासी

१ अ. ग. प. भा. १९१९, पृ. १००।

१ अल्लेख = पुरा हुआ लेख Inscriptions हिंदी के अनेक लेखक इस अर्थ में 'अभिलेख' लिखते हैं, हिन्दू नाँवा, आदि आदि जैसे लिखार में लिखा रही कहना तकने।



















कोसी के पूरब का कोई रास्ता उम समय बला हुआ न था।

लक्षित्वादित्य के समय के बाद दोनों देशों में प्रायः मैत्री का ही सम्बन्ध रहा। तिब्बत वाले भारत को अपना गुरु मानते थे और अब तक मानते हैं। मगध आदि देशों से अनेक भारतीय विद्वान् तिब्बत जाते रहे, वहां का कुल वाङ्मय उन्हीं के या उनके तिब्बती शिष्यों के किये हुए अनुवादों से बना है। भारतवर्ष में इस्लाम का स्थापना से दोनों देशों का वह सम्बन्ध टूट गया, और केवल हमारे पहाड़ी आंचल के साथ तिब्बत का पुराना सम्बन्ध रह गया।

इस्लाम की सेनायें उम पहाड़ी आंचल में भी प्रायः प्रवेश न कर सहीं। गडनवा तुर्कों ने भारतवर्ष के पहले पहाड़ी प्रान्त—अफगानिस्तान—को पूरी तरह अधीन करने के बाद करमांग तथा काँगड़ा पर चढ़ाईयाँ कीं; करमीर के दक्खिन से महमूद को हार कर लौटना पड़ा, पर काँगड़ा में नगरकोट की चढ़ाई में वह सफल हुआ। वो भी वह चढ़ाई केवल लूट के लिए थी, उसका काँगड़ा पर कोई स्थायी प्रभाव न हुआ। दिल्ली में तुर्कों का जो पहला राज्य स्थापित हुआ उसकी उत्तरी सीमा हिमालय की उपत्यका तक मुरिदल से पहुँचती थी। किन्तु करमीर में पाच्छिम से और उत्तर से धीरे धीरे इस्लाम आ रहा था, और याद वहाँ जो मुस्लिम राज्य स्थापित हुआ (१३३९ ई०) वह एक आन्तरिक क्रान्ति का फल था न कि बाहरी हमले का। किन्तु मुगलों के समय करमीर पहले पहल बाहरी मुस्लिम शाक्त क आघात हुआ। पहले तो मिर्जा हैदर ने उसे उत्तर तरफ खोजी ला से भाकर जीता (१५३० ई०), फिर अकबर के समय से वह दिल्ली की सल्तनत के अधीन रहा। करमीर के बाद काँगड़ा का वारा थी। महमूद गडनवा के समय से अकबर के समय तक उस हिस्से ने न छोड़ा था, जहाँगीर के समय जा कर उस पर पहले पहल

मुगल आधिपत्य नाम को स्थापित हुआ। उसके पूर्व के पहाड़ी प्रदेश फिर भी स्वतन्त्र रहे। सरमौर का पहाड़ी राजा जिस की राजधानी मैदान में केवल छः घंटे की तांगे की दौड़ पर है, बड़ी भारी शीघ्र समझा जाता था। गढ़वाल का राजा तो मूल्यमयूत्रा मुगलों का निग्रह कर सकता था। हांग शिफोह के औरंगजेब से हारने पर उस का बेटा सुलेमान शिफोह उसी गढ़वाल के राजा के पास भीतगर भाग गया था। गुद गोविन्द-सिंह ने जब औरंगजेब के विरुद्ध एक प्रान्ति संगठित करनी चाही, तब वे अपना आचार विश्वासपुर में गढ़वाल तक के पहाड़ी प्रदेश का हा बनाना चाहत थे। निमन्हे उन्हें यह विचार शिवाजी के परिवार में मिला था, किन्तु वे उन मुर्दा पहाड़ी राजाओं से बह जन न कृक सके जा शिवाजी ने मायजियों में कुं ही थी। नगल की तरह मुसलमानों ने कभी आर्य उठा कर नहीं देना, और मदान में शक्तिवार शिवाजी को मुँह की खा कर झोटना पड़ा था। बगल के गाहों की शक्ति कुषविदार और सिन्धुद नह मृगिहल से पहुँचनी थी।

किन्तु इन पहाड़ी प्रदेशों, विरोध कर नगल के माय निरपन का और निरपन के हांग खेन का भी सम्बन्ध मध्य काल में समाप्त होना रहा।

आधुनिक राजनीति में ब्रिटेन, फ्रांस और रूस की तिरोनी हर महान निरपन के लिए बहुत दिन पथनी रही, और अन्त में अन्तर्देश की इच्छा पर पहाड़ों के हर निरपन बहुत कुछ अन्तरी के सम्बन्ध में का गया। अन्तरे और अन्तरे में अन्त अन्तरे 'वर्तमान' हुए गये हैं, और अन्तरे नह अन्तरी महान एक और कर है। फ्रांस के राजनीतियों की योग्यता और इच्छा के कारण और शिवाजी राजनीति की प्रकृतियों के कारण निरपन अन्तरी की दृष्टि में पूरी तरह प्रकृत अन्तरे में बहुत

बुद्ध पपा हुआ है। उन तीन बड़ी शक्तियों के बीच होने के कारण  
 अब भी विश्व-राजनीति में वह एक काली महत्व का देश है।  
 स्वतन्त्र चीन का सामर्थ्य बढ़ने और भारतवर्ष के उत्तरी अञ्चल,  
 विशेष कर नेपाल, के जागरूक होने से उसका महत्त्व और भी  
 बढ़ जायगा। फरनीर, हुत्तू, बनौर, गढ़वाल, कुमाऊं, नेपाल,  
 सिक्किम और भूटान के साथ अब भी उसका काफ़ी व्यापार है।

चीनी तुर्किस्तान से तिब्बत और पामीर की विभाजक सीता  
 ( पारकन्द ) नदी की घाटी के ऊपर कारकोरम जोत बढ़ कर  
 शिखोक-घाटी और लदाख द्वारा जो रास्ता फरनीर पहुँचता है,  
 उससे उत्तरी रास्तों का दूसरा उपवर्ग शुरू होता है। वह रास्ता  
 पामीर के किनारे किनारे से निकल जाता और तिब्बत के  
 पच्छिमी ओषल को काटता है। इस उपवर्ग के यात्री सभ रास्ते  
 पामीर के अन्दर से शिखोक से पच्छिम की सिन्ध की उत्तरी  
 घागणों अर्थात् शिगर, हुंडा, गाल्गत, स्वात, पंजकरा और  
 यारखू की घाटियों में और उनके द्वारा सिन्ध-घाटी में उतरते हैं।  
 पामीरों के पूरव चीनी तुर्किस्तान और चीन, उत्तर फरसाना, और  
 पच्छिम बंधु का कांठा अर्थात् मध्य तुर्किस्तान है। इन सभी  
 प्रदेशों से भारतवर्ष में आने के लिए पामीरों के रास्ते बान आते  
 हैं। आनू के काँठे से बड़ज्जा की कोरबा नदी की घाटी के  
 ऊपर फ़ैजाबाद और वहाँ से जेबक तक बढ़ सकते हैं। जेबक  
 की ऊँचाई समुद्र-सतह से सिक २५०० फुट है। उसके ऊपर  
 सानने तुफ्तान, दोरा आदि जोत हैं जो बितराल और भारतीय  
 मैदान का रास्ता खोलती हैं, उसके उत्तरपूरव सर्पिण के तुच्छ  
 जोत ( ६५०० फुट ) पार कर बंधु की कोदनी या मोड़ के  
 किनारे इरक़शिम शहर तक पहुँचने का रास्ता है। इरक़शिम  
 से आनू घाटी के साथ पामीरों के अन्दर, और वहाँ से चाहे  
 दक्खिन तरफ़ भारत को, अथवा पूरव काशगर-पारकन्द के मैदान





पर स्थापित हो चुके थे, तब तक कायुल का तुप्पु यूनानी राज्य बना ही हुआ था। जर्मन विद्वान् मार्कार्ट ने उन पाँचों सरदारों के राज्यों की पहचान की थी, और उस सभी विद्वानों ने स्वीकार किया है। उनमें से एक घरा में, एक चित्तवाल में और एक गान्धार देश के उत्तरी दिरसे में कहीं था। दिन्दूकुरा पार से आने वाली कोई शक्ति कायुल लिये बिना चित्तवाल और उत्तरी गान्धार से ले, यह सभी हो सकता है यदि वह इन उत्तरी रास्तों से सिन्धु घाटी में प्रवेश करे। यह ध्यान देने की बात है कि कायुल और फारसों दोनों में शत्रु के रहते हुए भी मध्य एशिया से कम्बोज-उरशा ( पामीर-हजारा ) या कम्बोज-उड्डीयान ( पामीर-स्वात ) के इन रास्तों में सीधे रावलपिण्डी या पेशावर अर्थात् पूरबी या पच्छिमी गान्धार को पहुँचा जा सकता है। पामीर से नाँचे उतरने के रास्तों का उल्लेख ही हुआ है। यदि गिल्गित-हुंजा द्वारा सिन्धु-घाटी में उतरा जाय तो आगे चिलास और पावूसर ज़ोत द्वारा कुन्हार की घाटी में कागान होते हुए हजारा से तक्ष-शिला पहुँच सकते हैं। उसी प्रकार यारसू या स्वात घाटी ( उड्डीयान ) के रास्ते उतरें तो मालकन्द ज़ोत लाँघ कर पुष्करावती या उदभाण्डपुर पहुँच सकते हैं। ✓

अधिक लोग इन रास्तों से भारत में आये, किन्तु उनसे पहले भारतीय प्रवासियों ने उनके घर तक अर्थात् चीन के कानसू प्रान्त की सीमा तक 'उपरले भारत' में उपनिवेश बसाते हुए इन रास्तों को शायद पहले पहल खोजा था। आजकल के चीनी तुर्किस्तान में ईसवी सन में तीन चार शताब्दी पहले तक शक, तुस्वार, अथिच आदि आर्य जातियाँ फिरन्दर घरवाहों की अवस्था में रहती थीं, जब कि भारतीय आर्यों ने वहाँ अपनी सभ्यता और उपनिवेशों की स्थापना की। तब से आठवीं शताब्दी ई० तक वह देश ऐसी पूरी तरह भारतीय बना रहा कि आधुनिक विद्वान् उस काल के लिए उसे

'उत्तरभा भारत' (Saurashtra) कहते हैं। श्रष्टिकों और भारतवर्ष का पहला सम्बन्ध श्रष्टिकों के भारतवर्ष पर चढ़ाई करने से नहीं, प्रत्युत भारतवासियों के उनके देश को भारत का अंग बना लेने में हुआ। बाद में भारतवर्ष में श्रष्टिक साम्राज्य स्थापित होने और श्रष्टिकों के पूरी तरह भारतीय बन जाने से उपरल भारत में भारतीय मजा को और पुष्टि मिली। किन्तु श्रष्टिकों के भारत आने से पहले उम मजा की जड़ वहाँ जम चुकी थी; कनिष्क ने स्रोतन के राजा विजयसिंह के पुत्र विजयवर्मान के साथ मिल कर भारतवर्ष पर चढ़ाई की थी। भारतवर्ष और स्रोतन की अनुभूति के अनुसार पहले पहल मघाट अशोक के समय स्रोतन में एक भारतीय ज्ञानिद्वारा स्थापित हुआ था—अर्थात् कनिष्क में होने का शकःही पहले। कम्बोज देश अशोक के साम्राज्य में था, और अब यह ज्ञान आने पर कि कम्बोज देश प्राचीन पामीर और बदख़श या तिम की पूर्वी सीमा सीता या याकन्द मरी थी, इस बात की सम्भावना बहुत बढ़ गई है। इस बात के लिए अशोक के एक अभिलेख में भी साक्षी है, जेसा प्रतीत होता है। किन्तु चहूँ अशोक के समय और बाद उसके कुछ बाद मरिस कीटो में भारतीय मजा न बरस गया था। आठवीं शताब्दी ई० तक अर्थात् करीब एक हजार बरस पहले मजा वहाँ बनी नहीं इसमें कोई सन्देह नहीं है। और उम जन्मी अर्थात् कम्बोज देश वाले भारत के दूसरी मजा निवासन का म जन्मन का, नहीं भारतवर्ष और 'उत्तरभा भारत' का सम्बन्ध बना रह सकता था।

और उन्ही मजा के द्वारा भारतवर्ष का 'उत्तरभा भारत' के और का म जन्म म सम्बन्ध हुआ था। जन्म और भारतवर्ष के बीच सम्बन्ध का मजा वहाँ बहुत बराबर हुआ। आठवीं शताब्दी ई० १० में पहल मुह ह चुका था, किन्तु उन्ही मजा का वास्तव





आजकल की विरद-राजनीति में उन की क्या कीमत है, और उन से सेनायों लोप सबकी हैं कि नहीं, इस सम्बन्ध में हम इतना ही पाएंगे कि कम वाले अपनी पार्श्वी या नुर्गार्थी ताकती के लिए और अंग्रेज लोग चित्तल और गिलगित की दाखनियों के लिए पारी मजग रहते हैं, तथा रावलपिटी और गिलगित के बीच द्वारा जिले में आज अंग्रेजों के एक दर्जन शौजी धाने हैं ।

उ. उत्तरपार्श्वी और पार्श्वी स्थलनामः—दीरा और काश्कर में ईराक तक की लोको द्वारा बलम-पदरुता और बाबुल-पाटी के बीच चलने वाले इतिहास-प्रसिद्ध मार्गों का अंग्रेज उन उन प्रदेशों के धरान में हो चुका है । उसीमें हम देख चुके हैं कि बाबुल के उत्तर का पश्चिम में स्थान वाले सब रास्ते या तो पोरबन्दर अथवा पंजशीर पाटी में परीशर हो कर पंजशीर नदी के साथ चलते हैं, और या पानिया, ईराक और ऊनाई हो कर बाबुल नदी के साथ । परीशर और पानिया का महत्व इसी में प्रकट है । सिन्धु नदी ने इसी परीशर के स्थान पर अर्थात् पल्लव के स्थान पर सिन्धु नदी की ओर में अपनी एक ताकती अथवा नुर्गार्थी दाखनी की । आज भी उस स्थान का वंश ही मौजूब बना हुआ है । ऊनाई और न देकर उत्तर में प्रस्तुत होगा में ही अर्थात् की पाटी पदरुता स्थान वाले रास्ते की भी बाबू बनती है । पानिया और ईराक में जो शौजी अथवा शौजी मिले हैं वे स्थिति बनने हैं कि पार्श्वी द्वारा में भी वे स्थान नुर्गार्थी अथवा पल्लव पर हैं ।

बाबुल के स्थान के स्थान काश्कर नदी के साथ जाते हुए दीरा द्वारा पंजशीर का अर्थवादी है । सिन्धु नदी के स्थान में वे बाबुल की ही पल्लव अथवा नुर्गार्थी की पाटी का अर्थवादी अथवा पल्लव में जो शौजी का अर्थवादी अथवा पल्लव है । पल्लव और दीरा

फिर खान-घाटी और मालकन्द ओर द्वारा सिन्ध के पुराने घाट  
कोहिन ( उदभाण्डपुर ) पर ।

काबुल में दक्षिण के कुरम ( पैवार कोमल, शुगुर गर्दन )  
और टोर्षी के रामने व्यापार की दृष्टि में जतने महत्त्व के नहीं हैं ।  
लेकिन गोमल का रामना, जो गठनी के सामने है, और जिसकी  
रेलवे के लिए ज़ाब हो चुकी है, शायद खैबर से भी बढ़ कर  
है । उसके पूर्व पर डेरा इस्माइलख़ा से ४१ मील पर टोक राहर है,  
जहाँ से एक मुला रामना बाणों होकर गोमल को जमा गया है,  
और दूमरा टोक में गोमल की दूमरी धारा मोर के साथ  
बाणोउई (कोटे मन्वेमन), हिला मैक़ुला और दिन्दूबारा के कौमी  
धानों को निराना हुआ करता । कंटा इस प्रकार नकेवल कन्दहार  
के प्रच्युत मध्य के रामने की भी जड़ पर है । उसके ठीक नीचे  
बोन्नान बर्ग है । बोन्नान और कंटा कन्दहार-गठनी रामने की जड़  
को काट कर रहे हैं, इसी तरह टोक और बाणों गोमल-गठनी  
रामने की । कंटा में मोर पार्टी के व्यापार टोक तक जो कौमी नाहा-  
बन्दी की गई है, उसके द्वारा पटान ज़ानि के मूल पर-मोर पार्टी-  
का अन्वेषणविमान के पटानों में सम्बन्ध पूरी तरह बट गया है,  
जहाँ पार्टी अब त्रिदिग विन्वेषण में शामिल है । यही कारण  
है कि बड़े बर्ग के पटान-पटानों के मध्य में सड़ाकृदिरों में से हैं,  
तो भी वे वास्तव में गोमल-रामने के पटानों की तरह त्रिदिग व्यापार  
को नष्ट नहीं करती हैं ।

कंटा में कंटा और मोरक जल हो कर कन्दहार और  
जहाँ से होकर बट गया है । कन्दहार के सामने जमान तक  
त्रिदिग विन्वेषण पहुँच चुका है, उस होकर के उभर कुल तक  
हमारे विन्वेषण । त्रिदिग विन्वेषण कंटा में मोरक विन्वेषण दारिम की  
कीमत पर दुम्बल तक भी जमा गया है ।









# छठा प्रकरण

## समुद्र-परिखा

### § २२. जलपथ का ऐतिहासिक पर्यालोचन

त्रयोमवीं शताब्दी ई० के भारतीय विषयों के अनेक लेखक इस बात पर बड़ा ध्यान दिया करते थे कि एक तरफ हिमालय के पारकोटे और दूसरी तरफ समुद्र की परिखा में विरे रहने के कारण भारतवर्ष महा दुनिया भर में अलग रहा है, और उत्तर-पच्छिम के कुछ देशों या जंगलों के सिवाय और किसी तरफ से हमारा बाहरी जगत् में सम्बन्ध न था। बीसवीं सदी की नई श्रोज्ञ इस विचार को पुराने अन्धविश्वासों की रहो-टोकरों में डाल चुकी है। भारतवर्ष के इस कल्पित अकेलेपन का तिमही सारा केवल सिध्या विश्वासों की दृष्टि में है, एक ठोस भौगोलिक कारण को श्रोज्ञ निहत्या गया था। हमारे देश के पाठ्य-पुस्तक-लेखक हमें अब तक महाशक्त्य मानते आते हैं। भूमिदा में उत्तर भारतीय पाठ्य पुस्तकों के दो एक खण्डों में लिखे गये थे, निम्न-लिखित खण्ड दक्षिण के एक प्रसिद्ध इतिहासकार-श्री श्री पाठ्य पुस्तक का है—

“भारतवर्ष एक साम्राज्य शक्ति की है। जिन देशों का गठ रहस्य है। जिनमें अन्धविश्वास बन्दगी का बल है। और जिन के दक्षिण में इन्हीं के समुद्र है। इनके 'नवाम' अन्धविश्वास समुद्र



संसार के इतिहास पर भारतीय समुद्र से अधिक प्रभाव डाल सकता।

इतिहास की दृष्टि में भारतीय समुद्र का बड़ा ऊँचा स्थान है ... यह ठीक उन अक्षांशरेखाओं में फैला है जहाँ 'मध्य में अधिक ऐतिहासिक पनना का कटिबन्ध' शुरू होता है, ... अत्यन्त प्राचीन काल में समुद्र के आगपार के विस्तृत विविध-जालीय व्यवहार में उमड़ा बड़ा दिग्गज रहा है। यह ( बड़ी बड़ी ) घटनाओं की रंगमंचकी बनता रहा है।

भारतवर्ष के विश्वन पृथिव्या के बीच बीच में है, और इतिहासिक उमरका समुद्र प्राचीन मध्य पृथ्वी जगत के केंद्र में था। हम समुद्र का एक पश्चिम तरफ है, एक पूरव तरफ। पूरव तरफ हिन्दु-चीनी प्रायद्वीप भारतीय अथवा महासागु द्वीपसमूह और चीन है, पश्चिम तरफ पार्सिस की खाड़ी और लाल सागर और भारतीय सागर के लटकती दंग। भारतवर्ष के पूरबी छोर से चीन के जलमगल या विश्वन पर्यन्त तक समुद्र हिन्दु-चीनी और महासागु द्वीपों में प्राचीन काल से प्रगल्भी भाग रहने से, इसी कारण यह चीन और भारत की मजबूत बंधुन पुगली की दो भाइयों दंगी का परस्पर परिचय बंधुन पीढ़े हो पाया। हिन्दु-चीन का खाड़ी तथा लाल सागर के पक्षों में बंधुन पुगले समय—संभवतः ३०००-४००० ई० पू०—में मध्य अरबिया स्थली थी। विश्वन भारत के पूर्व-पश्चिम में इन अरबियों का बंधुन पुगला सम्बन्ध रहने के प्रमाण मिलते हैं। अरबों से मध्य के बंधुन अरबों मध्य को प्रचलना का सम्बन्ध है। मध्य बंधुन में

१. इतिहासिक उमर का दृश्य सम्बन्ध ३००० ई० पू० में प्राचीन अरबों के लाल सागर के ...



भारत के इतिहास पर भारतीय समुद्र से अधिक प्रभाव डाल सकता।

इतिहास की दृष्टि से भारतीय समुद्र का बड़ा ऊँचा स्थान है... यह ठीक उन अक्षांशरेखाओं में पैला है जहाँ 'यश म अधिक ऐतिहासिक घटना का कटिबन्ध' शुरू होता है, ... अत्यन्त प्राचीन काल से समुद्र के भारत के विभूत विविध-रातीय व्यापार में समझा बना दिग्मा रहा है। यह (बड़ी बड़ी) घटनाओं की रंगमंची बनता रहा है।

भारतवर्ष इतिव्यन पश्चिम के टीक बीच में है, और इसी-विषय समझा समुद्र प्राचीन मध्य पूर्वी जगम के बेन्दु में था। हम समुद्र का एक पश्चिम तरफ है, एक पूर्व तरफ। पूर्व तरफ हिन्दु-चीनी प्रायद्वीप भारतीय अथवा मलय द्वीपसमूह और चीन है, पश्चिम तरफ अरबों की खाड़ी और काब सागर और भारतीय सागर के तटवर्ती देश। भारतवर्ष के पूर्वी छोर से चीन के उत्तरगत वा इतिव्यन पूर्व तरफ समूचे हिन्दु-चीनी और मलय द्वीप में प्राचीन काल से जगती लोग रहते थे, इसी कारण यह चीन और भारत एतों की मध्यमा बहुत गुजरी की वो सा दुनी देश का परस्पर विषय बहुत विधि हो पाया। हिन्दु अरबों की खाड़ी तथा काब सागर के पूर्वी में बहुत बृहत्त मध्य-—समय ३००-४०० ई० पूर्व—में मध्य अरबों की खाड़ी की उत्तरगत भारत के उत्तर तरफ में पर अरबों की बहुत बृहत्त मध्य-। इस के कारण मध्य है और से मध्य के बड़े अरबों मध्य की उत्तरगत वा उत्तर है 'मध्य बहुत में

१ इतिव्यन मध्य मध्य ६ १ उत्तरगत उत्तर । उत्तरगत उत्तरगत उत्तरगत उत्तरगत उत्तरगत





होने पर अशुभार्थों पर भ्रम गईं, पर भारतवर्ष के पश्चिमी व्यापार में और भी बढ़ती हुई। पारसी सम्राट दारयवद्रु का एक नारिक मिश्र नदी में समुद्र-तट होने हुए जाल मागर के उचार खोर तक पहुँच गया, नव पारसियों और यूनानियों को भी उम जल मार्ग का पता चला। औरों सम्राटों की एक अच्छी जलमोना थी। पश्चिम अफ्रीका और एशिया के यूनानी राज्यों के साथ भारतवर्ष का जलमार्ग सम्बन्ध था।

द्विन्दु भारतीय व्यापारी प्रायः कारिम शाही तक ही अपना मार्ग ले जाने, और वहाँ से दुमरे हाथों बढ़ स्थल के रास्ते मिश्र यूनान आदि में पहुँचना। जाल मागर का मीना राजता बहुत कुछ नूना या बुना था। समुद्र २०० ई० पू० में एक भारतीय नारिक अपने मार्गों में विशुद्ध कर अकेला जाल मागर के तट पर जा पहुँचा, नव मिश्र के यूनानियों को जलमार्ग में गीने-मार्ग पहुँचने का उम्माद हुआ, और उमकी पदार्थकता में एक यूनानी वेदा मिश्र में मार्ग पहुँचा। उमके बाद में मिश्र और पश्चिमी वेदा का मार्ग में व्यापार बहुत गुना बढ़ गया। यूनान के स्थान में रोम का सम्पूर्ण स्थापित होने पर भी वह समुद्रिक व्यापार अनेक उचार-बढ़ानों में चला रहा। भारतीय व्यापारियों का एक समुद्र एक कर मट्ट कर प्रमोनी के तट पर भी जा जाल था।

दुमरे तट अगले में सुवर्णभूमि में अपने प्रचारक क्षेत्रों से, और उमके बाद प्रचलित काली ३० में भारतीय उचारवेदा वहाँ सम्पूर्ण जाल में दुमरी काली ३० में आर्जिनिक अजलम में चला, और उम पदार्थक अजलम की अगले भारतीय उचारवेदा जल कर में अजल उम कर उम काली तट पर उम सुवर्णभूमि और उम सुवर्णभूमि में अजलम जल कर उम अजलम व अजलम व अजलम अजलम में अजलम और उम सुवर्णभूमि की



पसन्द करती हैं। सन् १९२९ में दैनिक पत्रों में एक समाचार छपा था कि एक बंगाली सरकर जिसका समूचा जीवन पानी पर बीता था, लन्दन के एक तिमंत्रिले होटल में ठहरने पर इतना पचड़ा बठा कि वह होटल की सिड़की से टेम्स नदी में कूद पड़ा!

### § २३. जल- और स्थल-पथ का आर्थिक मूल्य

किन्तु जो भी कारण हो, आज भारतवर्ष का अपना सामुद्रिक वेड़ा नहीं है। और उम दशा में, ऐतिहासिक विन्सेन्ट स्मिथ का कहना है कि "भारतवर्ष अब उम शक्ति का सुनम प्राप्त है, जो समुद्र की अधिपति हो"<sup>१</sup>। इसका अर्थ क्या है?

यह ठीक है कि कोई यूरोपियन वा अन्य शक्ति, जिसे समुद्र के रास्ते भारतवर्ष पर बढ़ाई करनी हो, तब तक इस देश तक पहुँच नहीं सकती जब तक वह ब्रिटेन को समुद्र पर नीचा न दिखा ले। किन्तु यह ठीक नहीं है कि "उत्तरपच्छिमी दरों का सामरिक महत्त्व घट गया है और बम्बई और कराची का एसी हिमाज में बढ़ गया है"<sup>२</sup>। बम्बई और कराची का सामरिक महत्त्व अरु बढ़ गया है, किन्तु स्थल-मार्गों का महत्त्व भी अभी तक बना हुआ है। नैपोलियन के समय से आज तक उस तरफ से आ सकने वाली यूरोपियन सेनाओं के पैरों की आहट ने ब्रिटिश नेताओं को उन्निद्र और धिन्निन किये रक्खा है। यूरोपियन शक्तियों में से यदि एक के हाथ में भारतवर्ष के उल्लमार्ग का पूरा प्रमुख हो और दूसरी के हाथ स्थलमार्ग का, तो यह बात ठीक है कि उल्ल-स्वामिनी शक्ति स्थल-स्वामिनी की अपेक्षा बड़े स्वर्ष पर और घाटे कष्ट में भारतवर्ष तक पहुँच सकती है। किन्तु

१. औरवर्ष दि०, मृति०, १०८।

२. वही।



'उपरला भारत' (Serindia) कहते हैं। श्रष्टिकों और भारतवर्ष का पहला सम्बन्ध श्रष्टिकों के भारतवर्ष पर चढ़ाई करने से नहीं, प्रत्युत भारतवासियों के उनके देश को भारत का अंग बना लेने से हुआ। बाद में भारतवर्ष में श्रष्टिक साम्राज्य स्थापित होने और श्रष्टिकों के पूरी तरह भारतीय बन जाने से उपरले भारत में भारतीय सत्ता को और पुष्टि मिली। किन्तु श्रष्टिकों के भारत आने से पहले उस सत्ता की जड़ यहाँ जम चुकी थी, कनिष्क ने खोतन के राजा विजयसिंह के पुत्र विजयकीर्ति के साथ मिल कर भारतवर्ष पर चढ़ाई की थी। भारतवर्ष और खोतन की अनुश्रुति के अनुसार पहले पहल सम्राट् अशोक के समय खोतन में एक भारतीय उपनिवेश स्थापित हुआ था—अर्थात् कनिष्क से पौने चार शताब्दी पहले। कम्बोज देश अशोक के साम्राज्य में था, और अथ यह जाना जाने पर कि कम्बोज देश प्राचीन पामीर और पदक्षरों या जिस की पूरबी सीमा मीता या यारकन्द नदी थी, इस बात की सम्भावना बहुत बढ़ गई है। इस बात के लिए अशोक के एक अभिलेख में भी साक्षी है, ऐसा प्रतीत होता है। किन्तु चाहे अशोक के समय और चाहे उसके कुछ बाद तरीम कौंठे में भारतीय सत्ता ने प्रवेश किया हो, आठवीं शताब्दी ई० तक अर्थात् करीब एक हजार वर्षों तक सत्ता यहाँ बनी रही इसमें कोई मन्देह नहीं है। और उम लम्बी अवधि में कम्बोज देश वाले भारत के उत्तरी गन्ने नियमित रूप में चलने थे, तभी भारतवर्ष और 'उपरले भारत' का सम्बन्ध बना रह सकता था।

और उन्हीं गन्नों के द्वारा भारतवर्ष का 'उपरले भारत' के और अगे धान से सम्बन्ध होता था। चिन और भारतवर्ष के बीच प्राग्ज्योतिष के गन्ने थोड़ा बहुत व्यापार दूसरी शताब्दी ई० पू० से पहले शुरु हो चुका था, किन्तु दोनों देशों का परस्पर



पहुँच गई; छठी-सातवीं शताब्दी ई० में तुर्कों के मध्य एशिया में आ जाने पर भी चीन ने अपनी सत्ता उन पर बनाये रखी। और आठवीं शताब्दी ई० के आरम्भ में जब तरुण अरब साम्राज्य की विश्वविजयिनी सेनाओं ने मध्य एशिया पर पदाय्यां शुरू कीं, तब चीन-साम्राज्य ने कानसू से करमीर, कपिश और काबुल तक प्रत्येक पहाड़ी सीमान्त प्रदेश में अपनी छावनियां डाल कर और उन प्रदेशों के राज्यों को अपने संगठन के अन्दर सम्मिलित कर के हृदयार्थक उनका मुकाबला किया। चीन के दो तरफ के शत्रु अरब और तिब्बती बहुत धार परस्पर मिल जाते थे। तिब्बती लोग कानसू-कपिश-काबुल मार्ग को दक्खिन से काट सकते थे, और अरब पच्छिम और उत्तर से। उन दोनों को दो तरफ दबा कर उस मार्ग को बचाये रखना चीन का उद्देश्य रहता था। भारतवर्ष, चीन और एशिया के इतिहास में यह एक अत्यन्त रुचिकर प्रकरण है; आज यह देख कर सचमुच अचरज होता है कि इतने दूर देशों से ऐसे दुर्गम मार्गों द्वारा दोनों तरफ के दुरमनों को दबाने हुए चीन-साम्राज्य अपना सामरिक सम्बन्ध कैसे बनाये रखता था।

यदि हम इन सब बातों पर ध्यान दें,—‘उपरले भारत’ में भारतीय उपनिवेशों की स्थापना और उनका फलना-फूलना, अष्टिद्वि जाति का भारतवर्ष और मध्य एशिया में एक विशाल टिकाऊ साम्राज्य खड़ा करना, और चीन-भारत का परस्पर सम्बन्ध तथा उभ के परिणाम, इन सब घटनाओं का मानव इतिहास में किनासा मूल्य है इस पर विचार करें—तो हमें कहना होगा कि यह जो एक विचार घन गया है कि भारतवर्ष के उत्तरपच्छिमी रास्ते उत्तरी रास्ते में अधिक महत्त्व के हैं, यह एक निरा बहस है। उत्तरी रास्ते का इतिहास उत्तरपच्छिमी रास्ते के इतिहास से यदि अधिक महत्त्व का नहीं, तो किसी तरह कम भी नहीं है।





फेर स्वात-घाटी और मालकन्द जोत द्वारा सिन्ध के पुराने घाट मोहिन्द ( उद्भाण्डपुर ) पर ।

काबुल से दक्खिन के कुर्रम ( पैयार कोनल, शुतुर गर्दन ) और टोर्खा के रास्ते व्यापार की दृष्टि से उतने महत्त्व के नहीं हैं । लेकिन गोमल का रास्ता, जो गजनी के सामने है, और जिसकी रेलपथ के लिए जांच हो चुकी है, शायद खैबर से भी बड़ कर है । उसके मुँह पर डेगइस्माइलखां से ४१ मील पर टॉक शहर है, जहाँ से एक खुला रास्ता बाणो होकर गोमल को चला गया है, और दूसरा टॉक से गोमल की दूसरी घाग मोय के साथ मप्यांजई (हॉर्ट सन्डेमन), किला सैकुल्ला और हिन्दूवाता के कौत्री घाणों को मिलाना हुआ फेटा । फेटा इस प्रकार न केवल कन्दहार के प्रत्युन मोय के रास्ते की भी जड़ पर है । उसके ठीक नीचे बोलान दर्रा है । बोलान और केश कन्दहार-गजनी रास्ते की जड़ को काबू करने हैं, उसी तरह टॉक और बाणो गोमल-गजनी रास्ते की । फेटा से मोय घाटी के आरपार टॉक तक जो कौत्री नाछा-बन्दी की गई है, उसके द्वारा पठान जाति के मूल घा-मोय-घाटी-का अरुगानिस्तान के पठानों में सम्बन्ध पूरी तरह फट गया है, यह घाटी अब ब्रिटिश बिलोचिम्तान में शामिल है । यही कारण है कि चाहे वहाँ के पठान पठानों के मय से लड़ाकू किरकों में से हैं, तो भी ये वायव्य सीमा-ग्रन्थ के पठानों की तरह ब्रिटिश सरकार को तकलीफ नहीं दे पाते ।

बोलान से फेटा और श्योत्रक जोत हो कर कन्दहार और वहाँ से हेरान तक रास्ता है । कन्दहार के सामने घमन तक ब्रिटिश रेल-पथ पहुँच चुका है, उधर हेरान के उत्तर कुरक तक रूसी रेलपथ । ब्रिटिश रेलपथ फेटा से सीधा पच्छिम कारिम की सीमा पर दुश्शाप तक भी चला गया है ।



तक बढ़ा, यही घात युक्तिसंगत जान पड़ती है। सिन्ध से ही धर लौंघ कर वह सुराष्ट्र और उज्जैन तक पहुँचा।

उत्तरपच्छिमी सीमान्त का विशेष महत्त्व क्यों है सो पहले कह चुके हैं। किन्तु उस महत्त्व को साधारण पाठ्य-पुस्तक-लेखकों ने बहुत अधिक बढ़ा बढ़ा दिया है। कभी कभी तो वे भारतीय इतिहास को केवल उत्तरपच्छिमी आक्रमणों का एक तौता बना कर ही प्रकट करते हैं। सब से पहला बढ़ा वायव्य आक्रमण आर्यों का कहा जाता है। उसकी मीमांसा पाल्दे की जा चुकी है। तो भी आर्यों ने भी एक बार वायव्य मार्गों का प्रयोग किया, इस में कोई विवाद नहीं है; क्योंकि पार्जितर के मन के अनुसार भी भारतवर्ष से आर्यों का प्रवाह ईरान और पच्छिम एशिया की तरफ गया। आर्यों की तरह और उनमें भी पहले द्राविडों के भी पच्छिम से प्रवेश की कल्पना की गई है। ब्राह्मण नाम की एक द्राविड जाति सिन्धी सीमान्त पर कलान में रहती है, इसी से डा० कार्लड्वेल ने वह कल्पना की थी। उन्होंने द्राविडों का सम्बन्ध तुगनी या तुर्की जानियों से होने की भी कल्पना की थी। उनकी ये कल्पनायें विद्वानों ने स्वीकार नहीं की, तो भी दायित्वहीन पाठ्यपुस्तकलेखकों ने उन्हें निश्चिन्त मत्त मा मान लिया है, इस बात की शिकायत डा० सर ज्योर्ज मियर्सन ने भी की है<sup>१</sup>। ब्राह्मण लोग दक्खिन भारत से पच्छिमी व्यापार के मिला मिले में गये हुए एक द्राविड उपनिवेश के वंशज भी हो सकते हैं।

निश्चिन्त रूप से भारतवर्ष पर पहला उत्तरपच्छिमी आक्रमण पारसी सम्राट शक्यवहू का, और दूसरा सिद्धन्दर तथा उसके उत्तराधिकारी यूनानियों का था।

१. शिवागर्भट्टमर्षे चौक इण्डिया ( भारतवर्ष-भारत-वहूनाक-भा • भा० १० ) भाग १ ( भूमिका खण्ड ), त्रि० १, पृ० ८१-८२।



# छठा प्रकरण

## समुद्र-परिखा

### § २२. जलपथ का ऐतिहासिक पर्यालोचन

उन्नीसवीं शताब्दी ई० के भारतीय विषयों के अनेक लेखक इस बात पर बड़ा जोर दिया करते थे<sup>१</sup> कि एक तरफ हिमालय के परकोटे और दूसरी तरफ समुद्र की परिखा से घिरे रहने के कारण भारतवर्ष मदा दुनिया भर से अलग रहा है, और उत्तर-पच्छिम के कुछ दरों या जोतों के मिवाय और किमी तरफ से उसका बाहरी जगत् से सम्बन्ध न था। बीसवीं सदी की नई खोज इस विचार को पुराने अन्धविश्वासों की रद्दी-टोकरी में डाल चुकी है। भारतवर्ष के इस कल्पित अकेलेपन का जिसकी सत्ता केवल मिथ्या विश्वासों की हवा में है, एक ठोस भौगोलिक कारण भी खोज निकाला गया था। हमारे देश के पाठ्य-पुस्तक-लेखक उसे अब तक महत्वाक्य मानते आते हैं। भूमिका में उत्तर भारतीय पाठ्य पुस्तकों के दो एक रत्न पेश किये गये थे, निम्न-लिखित रत्न दक्षिण के एक प्रामुख इतिहास-अध्यापक की पाठ्य पुस्तक का है—

“भारतवर्ष एक साम्राज्य शक्ति नहीं है, जिन देशों का तब दन्तुर हो। जिनमें स्वाभाविक बन्दरगाह यन्त मकें ) और जिन के पड़ोस में डीपों के समूह हों, उनका निवासी स्वभावतः समुद्र

१ उदाहरण के लिये डॉ० रिम्डा—वायल जीक इण्डिया, पृ० १।



संसार के इतिहास पर भारतीय समुद्र से अधिक प्रभाव डाल सकता ।... ..

इतिहास की दृष्टि से भारतीय समुद्र का बड़ा ऊँचा स्थान है... यह ठीक उन अक्षांशरेखाओं में फैला है जहाँ 'मध्य में अधिक ऐतिहासिक घनता का कटिबन्ध' शुरू होता है,..... अत्यन्त प्राचीन काल से समुद्र के आरपार के विभूतन विविध-जातीय व्यापार में उसका बड़ा हिस्सा रहा है । वह... (बड़ी बड़ी) घटनाओं की रंगस्थली बनता रहा है ।<sup>१</sup>

भारतवर्ष दक्षिण एशिया के ठीक बीच में है, और इसी लिए उसका समुद्र प्राचीन मध्य पूरबी जगत के केन्द्र में था । उस समुद्र का एक पच्छिम तट है, एक पूरब तट । पूरब तट हिन्दूचीनी प्रायद्वीप भारतीय अथवा मलायु द्वीपसमूह और चीन है, पच्छिम तट फारस की खाड़ी और लाल सागर और भारतीय मागर के तटवर्ती देश । भारतवर्ष के पूरबी छोर से चीन के न नशान या दक्षिण पर्यंत तक समूचे हिन्दूचीनी और मलायु द्वीपों में प्राचीन काल में जगती लोग रहते थे, इसी कारण चाहे चीन और भारत देशों की मध्यता बहुत पुरानी थी तो भी दोनों देशों का परस्पर परिचय बहुत पीछे हो पाया । किन्तु फारस की खाड़ी तथा लाल सागर के पक्षों में बहुत पुराने समय — लगभग ३०००-१००० ई० पू० — में मध्य जातियों रहती थी । दक्षिण भारत के द्राविड प्रदेशों में उन जातियों का बहुत पुराना सम्बन्ध रहने के प्रमाण मिले हैं । शब्द में तुष के चेंटे मात्राएँ सुष्यु की उलथाया का उल्लेख है । तम बहुत से

१ इतिहास पृष्ठ नम्बर ६३६ पृष्ठ ४८६ ( भारतवर्ष प्राचीन जगत की दृष्टि में ) ७० ४१-४४ ।

२. १, ११६. ३-५ ।





पसन्द करती हैं। सन् १९२९ में दैनिक पत्रों में एक समाचार छपा था कि एक बंगाली लरकर जिसका समूचा जीवन पानी पर बीता था, लन्दन के एक विमंजिले होटल में ठहरने पर इतना पचड़ा उठा कि वह होटल की खिड़की से टेम्स नदी में कूद पड़ा!

### § २३. जल- और स्थल-पथ का आपेक्षिक मूल्य

किन्तु जो भी कारण हो, आज भारतवर्ष का अपना सामुद्रिक वेड़ा नहीं है। और उम दशा में, ऐतिहासिक विन्नेट सिमथ का कहना है कि "भारतवर्ष अब उस शक्ति का सुलभ प्राप्त है, जो समुद्र की अधिपति हो"। इसका अर्थ क्या है ?

यह ठीक है कि कोई यूरोपियन वा अन्य शक्ति, जिसे समुद्र के समते भारतवर्ष पर पड़ाई करनी हो, तब तक इस देश तक पहुँच नहीं सकती जब तक वह ब्रिटेन को समुद्र पर नीचा न दिव्या ले। किन्तु यह ठीक नहीं है कि "उत्तरपच्छिमी दरों का सामरिक महत्त्व घट गया है और बम्बई और कराची का उमी हिमाच से बढ़ गया है"। बम्बई और कराची का सामरिक महत्त्व ऊपर बढ़ गया है, किन्तु स्थल-मार्गों का महत्त्व भी अभी तक बना हुआ है। नैपोलियन के समय से आज तक उम तरफ से आ सकने वाली यूरोपियन सेनाओं के पैरों की आहट ने ब्रिटिश नेताओं को उन्निद्र और विन्निन किये रक्खा है। यूरोपियन शक्तियों में से यदि एक के हाथ में भारतवर्ष के जलमार्ग का पूरा प्रभुत्व हो और दूसरी के हाथ स्थलमार्ग का, तो यह बात ठीक है कि जल-स्वामिनी शक्ति स्थल-स्वामिनी की अपेक्षा थोड़े अर्थ पर और थोड़े कष्ट से भारतवर्ष तक पहुँच सकती है। किन्तु

१. बीएचएई १०, मूमि ३१, १०८।

२. वही।

















पियर्मन के मन में उसकी रीढ़ मराठी की है। उसके उत्तरपूरव मंत्री बोली है जो हलही और उड़िया के बीच कड़ी, हिन्दु तो भी उड़िया का अंग, है, यद्यपि मराठी के साक्षिण्य के कारण पर नागरी व लिखी जाती है न कि उड़िया लिपि में। वस्तर के मध्य में दक्षिण तरफ तेलुगु है<sup>१</sup>।

महाराष्ट्र के पूरवदक्षिण तेलुगु भाषा का समूचा क्षेत्र तेलंगण या आन्ध्र देश है। उसमें बैजागपट्टम में नेकूर, कडपट्ट, अनन्तपुर और कुर्नूल तक मद्राम अहाने के मध्य स्थित, तथा औरंगाबाद, पाभर्णा, नान्दूर, भार, उमानाबाद, रायचूर, भिंगसुगूर स्थित तथा विदर और गुलबर्गा के पच्छिमी बड़े हिस्से को छोड़ कर समूचा हैदराबाद रियासत, और वस्तर का दक्षिणी अंश सम्मिलित है। आन्ध्र ज्ञानि का उल्लेख भारतीय वाङ्मय में पहले पहल उमर बँदिक काल में पाया जाता है। ज्ञानियों के समय तक वह और उमर रहता था, और उसकी राजधानी तेलवाड नदी पर थी। आ छर्मासगढ़-उर्दमा को सीमा की आपुनिक लेल है

महाराष्ट्र के दक्षिण कनारी भाषा का क्षेत्र कर्णाटक है कोडुगु (कुर्गी) और मुयु कनारी की ही दो बालियाँ हैं। कर्णाटक में बँज्रापुर, बेलगाम, बारवाड, उमर और दक्षिण कनारा, कोडुगु, नीलगिरि, बन्नारी, रायचूर और उमानाबाद स्थित समूची मैसूर रियासत, गुलबर्गा और विदर स्थित का मुख्य पच्छिमी हिस्सा, अनन्तपुर स्थित का मद्गाँवर, बेलस स्थित के हंगूर और कृष्णा

१. भा. ७७० १०, ११ १२ १३-१४१।

२. बेरार का अन्त, २१२।

३. मैसूर रियासत का अन्त १) तेलवाड = तेल गिरान्तल का अन्त का अन्त है जिस का अन्त का अन्त का अन्त है, २) दक्षिण तरफ अन्त का अन्त २११२ २० २१।

शोलापुर तालुका मन्मिलित है। कर्णाटक भी बहुत पुराना प्रांत है। उसका पुराना नाम कुन्तल है। उसकी एकता का विचार पहले पहल हमें कुन्तल के कादन्य राजाओं के समय चौथी शताब्दी ई० में स्पष्ट रूप से मिलता है।

हिन्दू राज्यकाल के अन्तिम भाग में वह भारतवर्ष का अग्रणी था। नौवीं शताब्दी के अन्त या दसवीं के आरम्भ में उत्तर भारत में कर्णाटक के सैनिक विशेष पसन्द किये जाते थे, ऐसा प्रतीत होता है। मगध और बंगाल के सुप्रसिद्ध राजा धर्मपाल के तमारे उत्तराधिकारी नारायणपाल की सेना में कर्णाटक के सिपाही भरती होते थे<sup>1</sup>, सो बात विद्वानों के ध्यान में आ चुकी है। किन्तु यह आश्चर्य की बात है कि ग्यारहवीं शताब्दी के शुरू में अल-लिजि का परिचय होते हुए वह कहता है कि वह उस "कर्णाट देश में चलती है जहाँ से वे सिपाही आते हैं जो सेनाओं में कनार कहलाते हैं"<sup>2</sup> - मानो कर्णाटक ही सबसे प्रसिद्ध बौद्ध कनाटे सिपाही ही थे! अल-वेरुनी को भारतवर्ष के उत्तरपश्चिमी प्रांतों-प्रकारानिस्तान और पंजाब-से ही वाला पड़ता था, इसलिए ऐसा प्रतीत होता है कि उनके समय में शायद उन पंजाब में भी, जिनके निकट आज भारत भर में प्रसिद्ध हैं, कनाटे सैनिक पसन्द किये जाते थे। अधिक से अधिक हम यह कह सकते हैं कि अल-वेरुनी ने तब से उन्हें देखा न हो, उनके विषय में केवल सुना हो। जिन का नाम सुलतान महमूद सोमनाथ की चढ़ाई के लिए गइनों से रवाना हुआ था (१०२३ ई०) ठीक उनी बरस राजेन्द्र चोल ने दक्षिण भारत पर चढ़ाई की थी! और दोनों विजेताओं ने एक दूसरे के सामने सुना हो, और राजेन्द्र चोल की कनाटी सेना की कीर्ति में सुना हो। और राजेन्द्र चोल की कनाटी सेना की कीर्ति में सुना हो। और राजेन्द्र चोल की कनाटी सेना की कीर्ति में सुना हो।

<sup>1</sup> हिन्दु आर्यशास्त्र, १५, ६०-१०६।  
<sup>2</sup> अल-वेरुनी, अरबों की कृतियाँ, वि० १, ६०-१०६।



लम का क्षेत्र केरल या मलबार है। लकडिव भी केरल में सम्मिलित है। तामिलनाड और केरल की स्वतन्त्र सत्ता कम से कम अशोक के समय से चली आती है। तामिलनाड में उस समय चोल और पाण्ड्य दो राज्य थे; पाण्ड्य राज्य, जिसकी राजधानी मधुरा ( आधुनिक मदुरा ) थी निश्चय से एक आर्य उपनिवेश था। तामिल वाङ्मय का विकास पहले पहल उसी राज्य में हुआ।

दक्खिनी प्रान्तों के विषय में यह ध्यान में रखने की है कि दक्खिन के भौगोलिक प्रदेश तथा ये भाषाकृत प्रान्त जिनके नाम एक ही हैं, परस्पर बहुत कुछ मिलते हैं, पर हूचू नहीं।

सिंहल द्वीप के उत्तरी अंश में तामिल बोली जाती है, और शेष में सिंहली। भूगोल और इतिहास की दृष्टि से हम पूरे सिंहल को एक प्रान्त कहते हैं। मालडिविन अर्थात् मालडिव द्वीपसमूह और मिनिहोई द्वीप भी उसी में सम्मिलित हैं।

### § २६. पच्छिम-खण्ड के प्रान्त

पच्छिमी राजस्थान के भी हिन्दी-मण्डल में चले जाने से पच्छिम-खण्ड में गुजरात और सिन्ध प्रान्त बचे। गुजरात गुजराती भाषा का क्षेत्र है।

कच्छ भी गुजरात में ही सम्मिलित है। वैसे कच्छी बोली मैथिली की सम्मति से सिन्धी की एक शाखा है जिसमें गुजराती मिश्रण का गढ़ा है। किन्तु सिन्धी भाषा आजकल अरबी इत्यादि में 'अरबी' जगह लगी है और इस कारण भारतीय वर्तमान में पश्चिम कच्छी लोगों ने गुजरात को अरबों पढ़ने अरबों की भाषा बना लिया है।

अब सब दृष्टियों से एक उभर कर आता है, अर्थात् प्रान्त है उसकी भाषा सिन्धी है जो आजकल के इतिहास के अनुसार अरबों के आगमन से आरंभ हुई है और अरबों के आगमन





भारीक भेदों के बावजूद अपनी भौगोलिक स्थिति और अपने इतिहास के कारण पंजाब की प्रान्तीय एकता ऐसी स्पष्ट और निश्चिन्त है जैसी सिन्ध या गुजरात की। और पंजाब प्रान्त की इस स्वाभाविक अन्दरूनी एकता के ही कारण हिन्दी और पंजाबी आपस में ऐसी मिल जुल गई हैं—और भारतवर्ष में और कहीं भी एक बोली का दूसरी में इस प्रकार घुपघाप डलना नहीं हुआ—कि उनकी ठीक पारस्परिक सीमा भी निश्चित नहीं की जा सकती।

और एक गौण बोली खैयानी-बाफरी मुल्तान की पहाड़ियों में है। इन में से गाढ़पुरी तो हिन्दी कहीं नहीं कहलाती, पर यही को देग इन्गार्डल्ला में, और मुलनानी को मुत्तफूरगढ़, देग गात्रील में हिन्दी कहत है। मन्व में वही मिराहकी हिन्दी अर्थात् उपरकी हिन्दी कहलाती है। उतापट्टिमी बोली इतारा में और उतापुवी कोराट में हिन्दी कहलाती है जो हिन्दी शब्द का दूसरा रूप है। इस प्रकार पाँच मुख्य बोलियों में से चार हिन्दी कहलाती हैं। इस शब्द की व्याख्या यह की जाती है कि विष नदी के पश्चिम पहाड़ों की बोली पवता तथा हिन्दुओं की हिन्दी है, जो हिन्दुओं की होने के कारण हिन्दी कहलाती है ! मोद है कि डा० पियर्सन ने भी असावधानी की झोंक में यह व्याख्या स्वीकार कर ली है ( वही पृ १३६ )। इसे यह व्याख्या ऐसी ही लगती है जैसे टङ्गी=ठाकुरों की ( अ. रा. ए. मो. १९११ पृ ८०२ ), या कोल=मुघर ! हिन्दी को बोलने वाले हिन्दुओं की अवेगता हिन्दी मुसलमान अधिक हैं, और विष में जबके हिन्दी कहलाने का क्या कारण हो सकता है ? 'हिंदू' और 'हिन्दी' का मूक मले हा एक है—मिथु । स्पष्टतः यह विष-कटि की बोली होने के कारण हिन्दी कहलाता है, और यह भी ठीक है कि यह हिन्दुओं की अर्थात् विष-कटि के निवासियों की बोली है । मसमुक्त वहाँ हिंदू शब्द का वही अर्थ लना चाहिए, क्योंकि दूसरे अर्थ









१९०१ की गणना में डे० इ० खाँ की कुलाची तहसील के दक्खिन भाग में कामरानी गाँवों में कुछ बलोची बोलने वाले थे जो १९११ में हिन्दकी धोतते थे। उसके बाद अब मुलेमान के पच्छिम तरफ लोरलाई के पठान प्रदेश के ठीक माथ लगी हुई बरखान नद्मील में भी हिन्दकी का पूरा अधिकार हो गया है। पंजाब और अफगानिस्तान के बीच का यह बलोच फीटा इस प्रकार धीरे धीरे मिटता जा रहा है।

### ३. उत्तरपाञ्चमी अश —

(१) अफगानस्थान — दूरी बोलान के उत्तर त्रि० बलूचिस्तान के के ग-पिशीन, लोरलाई और भोव शिले तथा सरकारी पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त के चशीरिस्तान कुर्रम अफ्रीदी तीरा और मोहमन्द इलाके वस्तुतः ब्रिटिश अफगानिस्तान हैं। हम जिसे अफगान प्रदेश कहते हैं उसमें और आजकल के अफगानिस्तान में गड़बड़न हो, इसलिए हम असल अफगानिस्तान को अफगानस्थान कहेंगे। हमारा अफगानस्थान वास्त्व में पक्थ-कम्बोज देश है। उस में जहाँ पूर्वोक्त त्रि० अफगानिस्तान गिनना चाहिए, वहाँ कार्किरिस्तान या कपिश देश वास्त्व में उमहा अग नहीं है। ओरेह के नीचे ( पश्चिम ) और मन्जवार के उत्तरपच्छिम हरी-रुद का घाटी अर्थात् खाम हेरात को और सीमान्त को भी कार्गम में गिनना अधिक ठीक है। हिन्दूकुश के उत्तर तरफ बलख-प्रदेश अथवा अफगान तुर्किस्तान अब जनता की दृष्टि से परम कम्बोज नहीं रहा किन्तु कम्बोज देश का जो अश अब रूसी पंचाशन-मध्य में है उसे भी अफगानस्थान में गिनना चाहिए।

अफगान लोगो की भाषा परतो या परतो है। वे अपने को अफगान नहीं कहते वे 'फ' उच्चारण ही नहीं कर सकते, उनके तिम कर्वाले को लंग अफ्रीदी कहते हैं वे खुद उसे अप्रादी कहते हैं परतो या परतो भाषा विभिन्न अफगान कबीलो में एकना का

सुख सूत्र है, हमें बोलने वाले परतान या पल्लान कहलाते।  
 विममे एनाग पठान शब्द बना है। सब पठानों या परतानों  
 पत्नी-भाणियों की एक परम्परागत अनिश्चित आधार-पद्धति  
 भी है जिसे वे परतू-वाली या परतू-वाली कहते हैं और विममे  
 राजपूतों के रीति-रिवाज में बड़ी समानता है। लेकिन  
 अफगानस्थान की जनता में हजारा, ताजिक आदि जातियाँ भी हैं  
 जो परतानों या पल्लानों नहीं बोलती, और बहुत से अफगानों ने भी  
 शायद अपनी भाषा छोड़ कर फारसी अपना ली है। पठान लोग  
 उन्हें पार्सीवान कहते हैं। अरबानिस्तान की राजभाषा भी फारसी  
 है। इमीलिय हेरान जैसे प्रांत को अफगानस्थान में गिना जाय या  
 फारिस में भी कहना कठिन हो जाता है। जो भी पठानों और  
 पार्सीवानों का देश एक है: अफगानिस्तान के पार्सीवान जिन्हें  
 फारिस वाले अफगानों में गिने हैं ईरानियों से भिन्न हैं।

अफगानिस्तान का काकिरिस्तान या कपिरा प्रदेश जनता  
 और इतिहास की दृष्टि से अफगानस्थान का भाग नहीं है। ठीक  
 ठीक करे तो काबुल नदी के दक्खिन निम्नहार भी कपिरा का ही  
 देश है। कपिरा के पूरव बाजौर, स्वात, कुनर और यूसुफ़ुड का  
 इलाका प्राचीन पच्छिम गान्धार देश है: उसका पूरव गान्धार  
 अर्थात् उत्तरपच्छिमी पंजाब से अत्यन्त पुराने समय से सम्बन्ध  
 है: हिन्दु १५ वीं शताब्दी ई० में उस पर यूसुफ़ुड पठानों ने  
 पहले पहल बदाई की, और तब से पठान लोग काबुल नदी के  
 उत्तर बढने लगे, वहाँ के पुराने निवासी स्वामी लोग हजारा बने  
 गये यूसुफ़ुड इलाका अब पेशावर जिले में है, उसमें अब भी  
 पठानों और हिन्दु ही दोनों जातों हैं। पंटे कह चुके हैं कि  
 पेशावर काशगट और बलू जिले पंजाब का ही अंग हैं। उन्हीं  
 का बाजौर, स्वात और कुनर का भाग जिन्हें निम्नहार

याशिस्तान' कहा जाता है, कपिश में अधिक सम्बन्ध है ।

जिसे हमने कम्बोज देश कहा है, उसमें आजकल रान्वा बोलियां बोलती जानी हैं और उनका परतो-परतो में निकट सम्बन्ध है । कम्बोज उन्हें तुम्बार देश के पच्छिमी अंश बदख्शां में भी पहले उनमें मिनती कोई बोलती ही थी, लेकिन अब बदख्शां लोगों ने फारसी अपना ली है । तुम्बार या कम्बोज की जनता अब ताजिक कहलाती है । कम्बोज देश का मुख्य भाग आज रूसी पंचायत-संघ के अन्दर है, पर वास्तव में वह अफगानस्थान का एक अंश है ।

आमू नदी के दाहिने बदख्शां के उत्तर बोखारा पान्त में तो तुर्कमान और उरुच कररहते हैं, किन्तु आमू के मोड़ के पूरव पामीर में ताजिक । उस मोड़ के उत्तरी छोर से, अर्थात् बदख्शां के उत्तरपूरबी छोर से आमू की धारा खरफ्शां नदी के स्रोत से उसके साथ साथ और आमू के दाहिने दाहिने ताजिकों की एक बस्ती समरकन्द शहर के करीब तक पहाड़ों में चली गई है—उस बस्ती और बदख्शां के बीच आमू-कोठे का उरुचकिस्तान एक करने की तरह घुस गया है। अन्यत्र मैंने यह दिखलाया है<sup>१</sup> कि खरफ्शां-घाटी के ये ताजिक सम्भवतः प्राचीन भारत के 'परम कम्बोज' हैं । वे लोग आर्य और आर्य-भाषी हैं, किन्तु बलख-बोखाग में तुर्क-जातीय जनता के आ जाने से उनका देश दूसरे आर्यों में लगभग कट गया है, केवल बदख्शां के उत्तरपूरबी और पामीर के उत्तरपच्छिमी छोर से वह जग सा जुड़ा रह गया है। परम कम्बोजों का यह देश जनता की दृष्टि से तो अफगानस्थान का

१. याशिस्तान का अर्थ है भरातक देश । पंचायी लोग इन हल्कों को याशिस्तान ही कहते हैं ।

दरना अभां कठिन है ।  
यह कहा जा सकता है कि अफगानस्थान पठानों पाम

और ताजिकों का देश है । पठानों और पार्सीशानों को मिल  
अफगान भां कहा जाता है; कम्बोज देश का जब तक लोग  
न थे तब तक वहाँ के निवासियों को कम्बोज भां कहते थे य  
अब वह शब्द केवल उत्तर भारत की कम्बोज से आई हुई प  
थिरादरी के लिए रह गया है । इस प्रकार अफगानस्थान क  
अफगाना और कम्बोजों का देश भा कह सकते हैं ।

पठान भागतीय इतिहास की एक अत्यन्त प्राचीन जाति हैं ।  
पन्थों का सबसे पहला उल्लेख ऋग्वेद में राजा सुदास की  
नडाई के प्रकरण में है<sup>1</sup> । वहाँ उनके साथ भलाना (भलानसः)  
भलिन, विपाणों, और शिव जातियों के भी नाम हैं, जिनमें से शिव  
तो पन्थों के पड़ोसी थे, और याही जातियां शायद पन्थ-वर्ग  
की ही रही हों । भलाना के नाम का अवरुप दुरा बालान के नाम  
में होने का सन्देह वैदिक विद्वानों ने किया है<sup>2</sup> । शिव या शिवि  
लोग ऋग्वेद के एक उल्लेख से पन्थों के पड़ोसी माने जाते हैं  
और हमारी शिवि = तिवि शिनाख्त के अनुस्तर आज तक  
लिवि पन्थ-देश की ठीक सीमा पर है । पठान लोग अपने देश  
की परम्परागत सीमा आज तक वसां तिवि को मानते हैं ।  
ऋग्वेद के बाद दारयबहु (शरा) के अभिलेख में पन्थों और  
उनकी सजातीय कई जातियों के नाम आते हैं । वसां राजा के  
नानी वैश धिरोदोत ने अमीतों या अमुतों का उल्लेख किया है  
और आजकल के अमीतियों के पूर्वज ही थे<sup>3</sup> । पुराणों में भारत-

1. ऋग्वेद ७, १८० ।  
2. केन्दर हिस्टरी ऑफ इण्डिया वि० १, पृ० ८२ ।  
3. भा. भा ९, २० पृ० ५ ।

वर्ष के पच्छिम-खरड को अपरान्त कहा है। पर उत्तरायण के देशों में भी एक अपरान्त का नाम है। वायुपुराण में, जिसमें पाठ प्रायः और पुराणों की अपेक्षा शुद्ध होता है, उसके वजाय 'अपरीताः' पाठ है। पाज़ीटर कहते हैं कि वह पाठ गलत है। मेरा कहना है कि 'अपरीता' ही ठीक पाठ है, और 'अपरान्ता' गलत है। उत्तरायण के अपरीत आधुनिक अपरीदियों के पूर्वज थे। भारतवर्ष के पहले 'युइची' या श्पिक राजा कुजुल कपस कुपण के जाते प्रदेशों में चीनी ऐतिहासिकों ने 'पो-ता' का भी नाम लिखा है, वह 'पो-ता' पद्य का ही रूपान्तर प्रतीत होता है।

पाणिनि मुनि मरे विचार में पठान नहीं पंजाबी थे, क्योंकि उनकी जन्मभूमि स्वात-काठे में पठानों का दबल बहुत नया है। किन्तु चीन में पहले पहल बूद्ध का उपदेश ले जाने वाले करण मार्तंग और धर्मरत्न पिकसु अफगानस्थान के थे, या कपिरा-करमीर के, या पंजाब के गान्धार-देश के, इस का निश्चय करना लगभग असम्भव है। गुप्त राजाओं के गुरु और महायान के आचार्य वसुधन्वु और आसंग भी शायद पाणिनि की तरह पेशावरी पंजाबी ही थे न कि पठान, यद्यपि उनके विषय में बसो निश्चित बात नहीं कही जा सकती, क्योंकि पेशावर के दक्खिन पठानों का प्रदेश बहुत दूर नहीं है। मध्यकालीन और अर्वाचीन इतिहास में भी पठानों का बड़ा हिस्सा है। अर्वाचीन भारतीय साधार्थ का जन्मशता शेरशाह, जिसका भारतवर्ष के राष्ट्र निर्माताओं में एक प्रमुख स्थान है, पठान ही था।

इन सब उदाहरणों में जब हमने पठान शब्द का प्रयोग किया है, सब हमारा मतलब अफगानस्थान के नवामी से नहीं, प्रत्युत असल परतान-गख्तान लोगों से है। परतो-पठानो भाषा के क्षेत्र में

१. वसु १० ४०, ११२, साङ्ख्य १० ५०, १६, तथा उम पर पाई २१ की दिव्या ५० १.१ पर।









दृष्टि में भी उन्हें एक पान्त गिनना चाहिए । उन दोनों के बीच  
 पञ्जाब का पश्चिम गान्धार और वरसा ( मुराज युग का पश्चिमी )  
 प्रदेश काने की तरह घसा गया है, और उसी में से उन दोनों  
 के बीच का मुख्य मरुत गन्ता जाता है । बहुत बार बार भी  
 कश्मीर के अर्ध-जल रहा है, तो भी भाषा और जाति की दृष्टि में  
 वह पञ्जाब का ही है ।

डा० प्राकृ ने लिख दिया है कि दरद देश की पूर्वी सीमा  
 मिन-घाटी में नदाब के उत्तरपश्चिमी भाग में कम से कम  
 स्थानों के पूर्व मरुतला तक थी जहाँ अब निचली भाषा ने  
 अधिकार कर लिया है । वहाँ के लोग अब भी दरद हैं, पर जहाँ  
 न निचली भाषा ही और भाषा अपना भी है ।

कश्मीर के दक्षिणपूर्व भूभाग और पश्चिम में गुज्जर  
 नदाब के पूर्वी छोर तक पहाड़ी बालियाँ बाली जाती हैं । उनका  
 सम्बन्ध यदि हिमी भाषा में है तो इन्हीं की राजस्थानी बाली  
 में । इनमें से कश्मीर में जौनमार तक की बालियाँ पश्चिमपहाड़ी,  
 फिर मद्रवाल-कुमाँई की मध्य पहाड़ी और नेपाल की पूर्वी  
 पहाड़ी कहलाती हैं । पश्चिम के दक्षिण हिमालय में पञ्जाबी बाली  
 जाती है, और वहाँ से पूर्व तक वह ऊपर पहाड़ों में भी चला  
 और कुम्भ मण्डल के बीच पहाड़ की तरह जा घुमी है । इस  
 प्रकार वह कश्मीर-पश्चिम का अपने अन्तर्गत प्रदेश में आकर  
 रुक जाती है । पश्चिम का पश्चिमी बाली से कश्मीरी मध्यक जाती  
 है, और मद्रवादी या नम-पश्चिम और कुमाँई का विस्तार  
 ही है । कश्मीर की अब ही राजस्थान मध्य में है, इस के अतिरिक्त  
 इस पश्चिम का ही कश्मीर राजस्थान में ही पश्चिम ।

१. ... २. ... ३. ... ४. ... ५. ... ६. ... ७. ... ८. ... ९. ... १०. ...



(१) अन्तर्वेद का अर्थ, — इस प्रदेश में से कुमाऊँ-गढ़वाल और कनौर का अन्तर्वेद के साथ बहुत ही पुराना सम्बन्ध है। गढ़वाल में ही वह प्रयागों की परम्परा शुरू होती है जो अन्तर्वेद के पूरबी छोर प्रयागराज पर जा कर पूरा होती है। और गंगा के छान जिस प्रकार गढ़वाल में है, जमना के उसी तरह जौनसार, जुन्वल और क्यूँठन में, तथा सरसुतो के सरमौर में है। कुमाऊँ गढ़वाल ही प्राचीन इलायत-वर्ष है, और यदि किन्नर = कनौर की शिनाख्त ठीक है तो कनौर तक का प्रदेश भी उस में सम्मिलित था, क्योंकि इलायत-वर्ष में गन्धर्व और किन्नर रहते थे। पार्सीटर ने दिखलाया है कि वही अन्तर्वेद के आरम्भिक आर्यों का पवित्र देश और स्वर्ग था, और इलायत से आने के कारण ही शायद वे ऐल कहलाते थे<sup>१</sup>।

इन प्रदेशों के उत्तरपच्छिम सतलुज पार के सुकेत, मंडी और कुल्लू प्रदेशों का भी भाषा की दृष्टि से पंजाब की अपेक्षा इन्हीं प्रदेशों से और हिन्दीखण्ड से अधिक सम्बन्ध है। इसी कारण उन्हें अन्तर्वेद में गिनना चाहिए।

इस बात के प्रमाण हैं<sup>२</sup> कि मध्य काल के इतिहास में कीरप्राम अर्थात् वैजनाथ तक पहाड़ों में कनौज-साम्राज्य की सत्ता थी। करमीर के राजा मुक्तापीड ललितादित्य ( ७३३-७६९ ई० ) ने कन्नौज

१ प्रा० भा० दे० अ०, पृ० २१८, ३००।

२. मगध के राजा धर्मपाल ने चक्रवर्ष को जब कन्नौज की गरी पर बैठाया ( लगभग ८०० ई० ), तब भिन्न सामन्तों ने उसे अपना भक्ति-पति स्वीकार किया उनमें कीर का नाम भी है, दे० धर्मपाल का खली-मपुर-नामपत्र, एपिग्राफिया इंडिका, ४, पृ० २५२। कीरप्राम = वैजनाथ, यह वैजनाथ के दो अभिलेखों से सिद्ध है, दे० एपि० इ०, १, पृ० १०४, ११२।









## आठवाँ प्रकरण

### भारतवर्ष की प्रमुख भाषायें और नरलें



#### § ३३. आर्य और द्राविड .

भारतवर्ष के प्रान्तों की चर्चा करते हुए हमने प्रत्येक प्रान्त की भाषा और बोली का उल्लेख किया है। इन भाषाओं के मूल शब्दों और धातुओं की, तथा व्याकरण के ढाँचे की—अर्थात् संज्ञाओं और धातुओं के रूप-परिवर्तन के, उपसर्गों और प्रत्ययों की योजना के, और वाक्यविन्यास आदि के, नियमों की—परस्पर तुलना करने से बड़े महत्त्व के परिणाम निकले हैं। हिन्दी की सब बोलियों का तो आपस में घनिष्ठ सम्बन्ध है ही, उसके अनिश्चित आसामिया बंगला और उड़िया का, मगधी और सिन्धी का, गुजराती और मिन्धी का, पंजाबी और हिन्दी का, तथा पहाड़ी बोलियों अर्थात् नेपाल की गोरखाली भाषा और कुमाऊँ-गढ़वाल की तथा जौनसार से बम्बा तक की सब बोलियों का—अर्थात् हिन्दीखण्ड, पूरब खण्ड पच्छिम खण्ड और उत्तर-पच्छिम-खण्ड की सब मुख्य भाषाओं, दक्खिन खंड में मराठी और सिन्धी, तथा पर्वतखंड में नेपाल से बम्बा तक की बोलियों का—एक दूसरे के साथ गहरा नाता है। "बंगाल से पंजाब तक . समूचे देश में, और राजपूताना, मध्य भारत और गुजरात में भी जनता का समूचा शब्दकोष, जिसमें साधारण बर्ताव के लगभग सब शब्द हैं, उच्चारण-भेदों को छोड़ कर एक ही है।" इन सब



या नस्ल का मूल और एकमात्र पर दक्खिन भारत ही है। एक द्राविड बोली, माहूर्, भारतवर्ष के पच्छिमी दरवाजे पर है, इस से यह कल्पना की गई थी कि द्राविड लोग भारतवर्ष में उत्तर पच्छिम से आये हैं। किन्तु इस कल्पना के पक्ष में कुछ भी प्रमाण नहीं है। ऐसा भी हो सकता है कि माहूर् लोग दक्खिन भारत के समुद्रतट के पच्छिमी देशों के साथ होने वाले व्यापार के मिलमिले में उत्तरपच्छिम जा वसे एक द्राविड उपनिवेश को सूचित करते हों।

विद्यमान द्राविड भाषायें चार वर्गों में बँटती हैं—(१) द्रविड वर्ग, (२) आन्ध्र भाषा, (३) विचला या मध्यवर्ती वर्ग, और (४) माहूर् बोली। तामिल, मलयालम और कनाडी, तथा कनाडी की बोलियाँ तुलु और कोडगु ( 'कुर्ग' की बोली ) सब द्रविड वर्ग में हैं। तेलुगु या आन्ध्र भाषा अकेले एक वर्ग में है। इन परिष्कृत भाषाओं की उत्तरी सीमा मद्रास का चान्दा जिला है। विचले वर्ग में सब अपरिष्कृत बोलियाँ हैं जो दूमरी मध्य भाषाओं के पवाड़ में द्वीपों की तरह घिर कर रह गई हैं। वे किसी भी एक पूरे प्रान्त की बालियाँ नहीं, और उनमें से बहुत सी धीरे धीरे मर रही हैं।

उन बोलियों में से सब से मुख्य और प्रसिद्ध गोंडी है। गोंडी अपनी पड़ोसन तेलुगु की अपेक्षा द्रविड वर्ग की भाषाओं से अधिक मिलती है। उसके बोलने वाले गोड लोग कुछ आन्ध्र में, कुछ उड़ीसा में, कुछ पगड में, और कुछ चेदिकोराल और मालवा की सीमा पर हैं, किन्तु सब से अधिक चेदिकोराल में हैं। गोड एक बहुत प्रसिद्ध जाति है, और उनकी बोली गोंडी कहलाती है, जिसकी न कोई लिपि है, न कोई साहित्य या वाङ्मय। परन्तु 'ग डो' एक भ्रमजनक शब्द है। क्योंकि बहुत से गोड अब अपने पड़ोस की आर्यभाषा से मिली खिचड़ी बोली बोलते हैं,



1  
2  
3  
4  
5  
6  
7  
8  
9  
10  
11  
12  
13  
14  
15  
16  
17  
18  
19  
20  
21  
22  
23  
24  
25  
26  
27  
28  
29  
30  
31  
32  
33  
34  
35  
36  
37  
38  
39  
40  
41  
42  
43  
44  
45  
46  
47  
48  
49  
50  
51  
52  
53  
54  
55  
56  
57  
58  
59  
60  
61  
62  
63  
64  
65  
66  
67  
68  
69  
70  
71  
72  
73  
74  
75  
76  
77  
78  
79  
80  
81  
82  
83  
84  
85  
86  
87  
88  
89  
90  
91  
92  
93  
94  
95  
96  
97  
98  
99  
100

101



दोनों देशों की प्राचीन परिपाटी के अनुकूल है। उस वंश में उस बड़े वंश के लिए अनेक नाम गढ़े गये हैं, और उन में से मुख्य हैं हिन्द-यूरोपी तथा हिन्द-जर्मन। हिन्द-यूरोपी शब्द हमें निहम्मा लगता है, क्योंकि उसमें आर्य वंश के तीन मुख्य घरों, अर्थात् भारत ईरान और युरोप, में से दो का नाम आता है और तीसरे का रह जाता है। हिन्द जर्मन शब्द का जर्मनी में बहुत प्रयोग होता है, और उसमें यह गुण है कि वह आर्य वंश की उन दो शाखाओं के नाम से बना है जो पूरव और पच्छिम के अन्तिम किनारों पर रहती हैं तथा जिनमें से एक इतिहास में उस वंश की सभ से प्राचीन और दूसरी सभ से नवीन जाती है। वह पाणिनीय व्याकरण के प्रत्याहारों के नमूने पर गढ़ा गया है। आगे हम हिन्द-जर्मन शब्द का प्रयोग करेंगे, और यदि आर्य शब्द को हम अर्थ में लेंगे तो वंश शब्द उसके साथ लगा कर ही जड़ी अकेला आर्य शब्द आयागा, वही उस में आर्य शब्द ही समझना होगा।

हिन्द-जर्मन परिवार के सब लोग हिमी पचपन के उमाने में एक साथ रहने थे, जो लगभग निश्चित है। वह मूल पर कहीं था, इस विषय पर बेदिमाय विवेचना हुई है, हिन्दु अभी तक समझा अन्त नहीं हुआ, और न बहुत काल तक हो सकेगा। हमारे विषय में उसका विरोध सम्बन्ध नहीं है। उस वंश की विभिन्न शाखाओं के अलग हो जाने के बाद भी आर्य रहस्य की शाखाएँ बहुत समय तक एक जगह रही, जो जो निश्चित है। वह जगह कहीं थी इस पर भी बेहद विचार है जिसे हम यहाँ नहीं छड़ सकते। इस पत्र के काइ सम्मान आर्थों के मसूचे इतिहास के अध्ययन के बाद ही बनाना चाहेंगे, न कि पहले में एक सम्बन्ध रख कर इतिहास रचने देंगे। इतिहास वही हवे करके इन्हीं परिमाणों का रहने का सम्बन्ध अतिहास है जो

इतिहास का अध्ययन करने से पहले भारतवर्ष की भाषा और नल्ल-विषयक विद्यमान स्थिति की छानबीन से ही निकल आते हैं।

आधुनिक निरुक्तिशास्त्रियों ने इन विषय में जो सिद्धान्त निश्चित किये हैं, वे ये हैं। हिन्द-जर्मन वंश का एक बड़ा स्कन्ध है आर्य। उस स्कन्ध की तीन शाखाएँ प्रतीत होती हैं— आर्यावर्ती, ईरानी और दरदी या दरद-जातीय।

### § ३६. दरदी शाखा

दरदी शाखा की भाषायें अब कपिश-कश्मीर भर में बची हैं, किन्तु पहले उत्तरपूरबी अफगानस्थान में और अधिक फैली हुई थीं, और काबुल नदी के दक्खिन भी थीं जहाँ अब इनकी एक आध बोली बड़ीरिस्तान में बची है। उसके अतिरिक्त हिन्दकी और सिन्धी पर दरद-जातीय भाषा का स्पष्ट प्रभाव दीखता है। पंजाबी पर वह प्रभाव अपेक्षया कम है, और राजस्थान के मालवा प्रदेश की भीली बोलियों में भी थोड़ा बहुत नलकता है। कश्मीरी भाषा यद्यपि दरदजातीय है, तो भी उस में आर्यावर्ती रंगत कुछ हद तक आ गई है।

आधुनिक दरदजातीय भाषाओं के तीन वर्ग हैं—(१) कपिश या काकिर वर्ग, (२) खोवार वर्ग, और (३) दरद वर्ग। कपिश वर्ग में कपिश या काकिरस्थान की, और खोवार वर्ग में खनराल की बोलियों सम्मिलित हैं। खान दरद वर्ग में सिन्धी, कश्मीरी और काश्गरी (मैयों) तीन बोलियों हैं। उन में से इन आधुनिक दरदों का उठना है। कश्मीरी सम्बन्ध शब्दों में सब में सुन्दर और एकमात्र पारकृत भाषा है।

उठ दरद प्रदेश में हुडा और नगर नाम की बोलियों में अद्यत्त खनराल नदी का उत्तरपूरबी धारा हुडा का घाटियों में दरदकी नाम की एक बोल है। वह भाषाविज्ञानियों के लिए





शताब्दी ई० पू० ) के अभिलेखों में पाया जाता है। उसी का मध्यकालीन रूप सासानी राजाओं ( तीसरी-छठी शताब्दी ई० ) के समय की पहलवी थी, तथा आधुनिक रूप विद्यमान फारसी है। मदी प्राचीन मदी या मन्दी ( Media ) प्रदेश की तथा ईरान के पूर्वी-पश्चिम के प्रदेशों की भाषा थी। पारसी धर्म का पवित्र ग्रन्थ अबतवा उसी भाषा में है। उसके मध्यकालीन रूप का कोई नमूना नहीं मिलता। उसकी आधुनिक प्रतिनिधि कुर्दिस्तान की बोलियाँ तथा अफगानस्थान की परतो गल्चा अदि हैं।

भारतवर्ष के क्षेत्र में मदी वर्ग की मुख्यतः परतो और गल्चा भाषाएँ ही आती हैं। परतो के विषय में बहुत देर तक यह विवाद रहा कि वह आर्यावर्ती भाषा है या मदी। सन् १८९० ई० तक आधुनिक नैरुद्धों का रुझान उसे आर्यावर्ती मानने का था, किन्तु उसके बाद से अब उसे निश्चित रूप से मदी माना जाता है। एक गल्चा बोली युद्दरा चितराल के सामने दोरा जोर द्वारा हिन्दूकुश के दक्खिन भी उतर आई है, और चितराल और दोरा के बीच लुद्धो घाटी में बोली जाती है। उनकी रंगत चितराल को दरद जनाय खोवांग बोली में भी कुछ पड़ गई है। परतो बोलने वालों की मन्दा अन्दा उन ५० लाख है अफगानस्थान के पारसीवनों और गन्चा-भाषियों की ठीक मन्दा नहीं मिल सकती पर वह अन्दा उन १० २ लाख होगी।

उनके अतिरिक्त अफगानस्थान में शायद कुछ नुकी बोलने वाले भी हैं। तुर्क और इराक जातक जातेया है जो आर्य जाति से एकदम भिन्न है। अफगानस्थान और भारतवर्ष पर उनके बहुत साकमण हुए है, पर यहाँ जो तुर्क-इराक आये उनके बराबरी में से अफगानस्थान के उक्त कुछ नुकी-भाषियों के जोड़ नये आर्य भाषाएँ अपना चुके हैं।

## § ३८. आर्यावर्ती शाखा

आर्यावर्ती शाखा बहुत फैली हुई है। आजकल के निरुक्तिशास्त्री उसे तीन उपशाखाओं में बाँटते हैं—भीतरी, बिपरी और बाहरी। भीतरी उपशाखा के दो वर्ग हैं—केन्द्र वर्ग और पहाड़ी वर्ग। केन्द्र वर्ग का केन्द्र यही पहाड़ी हिन्दी है जिसका महत्त्व हम पिछले प्रकरण में दिखला चुके हैं। पहाड़ी हिन्दी में, जैसा कि कह चुके हैं, पाँच बोलियाँ हैं—कनौजी, बुन्देली, राजभासा, खड़ी बोली और बांगरू। इन सबका भी केन्द्र राजभासा है। और खड़ी बोली, जिनके आधार पर कि राष्ट्रभाषा हिन्दी बनी है, पहाड़ी हिन्दी का पंजाबी से ब्रह्मता हुआ रूप है। प्राचीन वैदिक और शास्त्रीय साहित्य तथा शौरसेनी प्राकृत भी पहाड़ी हिन्दी-संघ की बोलियाँ थीं।

हमने तमाम हिन्दी-संघ को मध्यमवर्ग कह कर उसके पारोपदेशिक मानवर्ग के प्रान्तों का बँटवारा किया है। यह बँटवारा भौगोलिक और व्यावहारिक दृष्टि से है। निरुक्ति-शास्त्रीय बँटवारा उससे कुछ बदलता है। उसके अनुसार केन्द्र-वर्ग में पहाड़ी हिन्दी के अनिश्चित पंजाबी, राजस्थानी और गुजराती के तीन मुख्य भाषाएँ आती हैं। पंजाबी केवल पूरव पंजाब की। राजस्थानी और गुजराती के बीच मौखी बोलियाँ हैं, कन्ही का एक रूप बज्जरेली भी है; बज्जरेली अमल में भाज्जरा का अंग है, जब महाराष्ट्र में आ जाने से उसमें बदलने क्रियाने की भाँति मगड़ी हो गई है। कनौजी और बज्जरेली भी केन्द्र वर्ग में हैं। राजस्थानी और गुजराती का एक ही वर्ग भी वरम वरम एक ही भाषा थी। भाज्जरा और गुजरात के इन्धाम में भी परस्पर बड़ा सम्बन्ध रहा है।

इसका पूर्वी राजस्थान में बिजा व टीह संस्करण-वर्धन्यम  
अनुसंधान काल में विद्यमान से सब भाग रहन है जिनके काल



10

11

12

13

14

15

16













एक मंजी हुई वाङ्मय-मम्पन्न भाषा है जो अब वर्मा के तट पर पगू, थतोन और एम्हूर्स्ट शिलों में पाई जाती है। स्मेर कम्बुज दश के मुख्य निवासी स्मेर लोगों की भाषा है। उसमें भी अक्षय वाङ्मय है। मोन और स्मेर लोग एक ही जाति के हैं। पलौंग और वा उत्तर वर्मा की जंगली बोलियां हैं। निकोशारी निकोशार द्वीप की बोली है जो मोन और मुएड बोलियों के बीच फड़ी है। खासी बोलियां भी उसी शाखा की हैं और वे आसाम के खासी-त्रयन्तिया पहाड़ों में बोली जाती हैं। भारतवर्ष के क्षेत्र में मोन-स्मेर शाखा का केवल खासी बोलियां, और यदि निकोशार को भारत में गिनना हो तो निकोशारी है। खासी बोलियां बोलने वाले कुल २ लाख ४ हजार, और निकोशारी ८० हजार पिछली गणना में थे। निकोशार के उत्तर अन्दमान द्वीप हैं, जहां के लोग अभी तक बहुत ही असभ्य दशा में हैं, और जिनकी बोली भी एक पहेली है। बुद्धराश्री की तरह उसका भी संसार के किसी वंश से सम्बन्ध नहीं दीख पड़ता।

मुएड या रावर शाखा की बोलियां विन्ध्यमेखला या उसके पड़ोस में विद्यमान हैं। उनमें से मुख्य बिहार में छोटा नागपुर तथा सन्थाल-परगने (विन्ध्यमेखला के पूर्वी छोर) की खेरवारी बोली है, जिसके सन्थाली, मुएडारी, हो, भूमज, कोरवा आदि रूप हैं। खेरवारी के कुल बोलने वाले ३५ लाख हैं, जिनमें सन्थाली के २२\*३ लाख मुएडारी के ६\*३ लाख, और हो के ७ लाख हैं। ध्यान रहे कि खास सन्थाल-परगना में सन्थाल लोग छोटा नागपुर से १८ वीं शताब्दी ई० में ही आये हैं। मुएडारी बोलने वाले मुएडालोग ओरोंव लोगों के साथ एक ही प्रदेश में मिले जुले रहते हैं। कूरकू नाम की एक दूसरी बोली जिसके बोलने वाले कुल १\*२ लाख हैं विन्ध्यमेखला के पच्छिमी छोर पर भालवा (राजस्थान) और खेदिओराज की सीमाओं पर पचमड़ी



लिए 'शावर' के ललित 'शावर' को अधिक सुबोध और स्पष्टार्थक पाते हैं। उत्तर भारत के ग्रामीण लोग इन जातियों को कोल कह कर भी याद करते हैं। कुछ लेखक उन्हें 'कोलरी' ( अंग्रेजी-कोलरियन ) भी लिखने लगे थे, जो कि एक निरर्थक श्रान्त और लगव शब्द है।

मुण्ड या शावर बोलियां बोलने वालों की कुल संख्या सन् १९२१ में ३६\*७३ लाख थी; उनमें टासी, सिंदल के मज्जायुओं और निकोबारियों की संख्या जोड़ देने से कुल आग्नेय-भाषियों की संख्या ४२ लाख होती है।

यह एक बड़े मारके की बात है कि पूर्वी नेपाल की तथा चम्पा में अलमोड़ा तक की कुछ पहाड़ी बोलियों में, जिनका हम अभी उल्लेख करेंगे, मुण्ड या शावर भाषाओं का तलछट स्पष्ट और निरिचत रूप से पकड़ा गया है। उन बोलियों में से सब से अधिक उल्लेख-योग्य कनौर की कनौरी या कनावरी है। अरब और द्राविड भाषाओं पर भी शावर प्रभाव हुआ है, विशेष कर बिहारी हिन्दी और तेलुगु में उसकी झलक प्रतीत होती है।

आग्नेय जातियों की स्थिति आज भारतवर्ष में और हिन्द-चीनी प्रायद्वीप में भी भले ही गौण हो, भारतवर्ष के पिछले इतिहास में उनका बड़ा स्थान है। समूची सुवर्णभूमि और सुवर्णद्वीपों में पहले वे ही फैले हुए थे, यरमी, स्यामी और थानामी लोगों के पूर्वज उस समय और उत्तर के पहाड़ों में रहने थे। इन्हीं आग्नेय जातियों में भारतवासियों ने अपने उपनिवेश स्थापित कर और अपनी सभ्यता और सभ्यता की कलम लगा कर उनके देश को दूसरा भारतवर्ष बना दिया था। उनकी सभ्यता, उनकी भाषा और उनके वाङ्मय पर भारतवर्ष का बड़ा छाप आज तक लगी है।

§ ४२. चीन-किरात या तिब्बत-चीनी वंश

हिमालय के उत्तरी हाशिये और पूरबी छोर में तथा उसके









उसकी तीन शाखायें अभी तक मालूम हुई हैं—(१) तिब्बत-हिमालयी, (२) आसामोत्तरक, तथा (३) आसाम-बर्मी या लौहित्य। तिब्बत-हिमालयी शाखा में तिब्बतकी मुख्य भाषायें और बोलियाँ तथा हिमालय के उत्तरी आँचल की कई छोटी छोटी भोटिया बोलियाँ गिनी जाती हैं। लौहित्य या आसामबर्मी शाखा के भी नाम से ही प्रकट है कि उस में बर्मा की मुख्य भाषा तथा आसाम-बर्मा-सीमान्त की कई छोटी छोटी बोलियाँ शामिल हैं। आसामोत्तरक शाखा दोनों के बीच आसामोत्तर पहाड़ों में है, उसकी कल्पना और नाम अभी आरखी है; यह निश्चित है कि उसकी बोलियाँ उक्त दो शाखाओं में नहीं समानी, किन्तु वे सब मिल कर स्वयं एक शाखा हैं कि नहीं इसकी छानबीन अभी नहीं हुई; वह केवल एक भौगोलिक इकाई है।

तिब्बत-हिमालयी शाखा में फिर तीन वर्ग हैं—एक तो तिब्बती या भोटिया जिस में तिब्बत की मंजी-सँवरी वाङ्मय-सम्पन्न भाषा और बोलियाँ सम्मिलित हैं, और बाकी दो वर्ग हिमालय की उन बोलियों के हैं जिनकी बनावट में सूदूर तिब्बती नींव दीख पड़ती है।

सानवी शताब्दी ई० में जब तिब्बत में भारतीय प्रचारक बौद्ध धर्म ले गये तब उन्होंने ने वहा की भाषा को भी मौजा संवारा और उसमें समूचे बौद्ध तिपिटक का अनुवाद किया। तिब्बती भाषा में अब अच्छा वाङ्मय है, और वह है सब भारत से गया हुआ। उन भाषा की कई गौण बोलियाँ भारत की सीमा पर भी बोलो जाती हैं। उन्हें दो उपवर्गों में बाँटा जाता है—एक पाँचखमी जिसमें बाल्तिस्तान या बालौर की बाल्ती और पुरिक बोलियाँ तथा लद्दाख की लद्दाखी बोलो गिनी जाती है। समूचा बालौर तथा लद्दाख का पच्छिमी अंश पहले दरद देश में सम्मिलित था, और वहा की भोटिया-भाषी जनता का वहत मा अंश वास्तव में दरद है। बाल्ती-पुरिक और लद्दाखी के कुल मिलना कर बोलने वाले





























दीख पड़ता है. और रंग की पहचान को बिलकुल निकम्मा नहीं कहा जा सकता ।

खोपड़ी की लम्बाई-चौड़ाई भी एक अच्छी परख है । एक पंजाबी या अन्तर्वेदिये और एक बंगाली का सिर देखने से ही बंगाली का सिर चौड़ा दीख पड़ता है । यदि खोपड़ी की लम्बाई को १०० माना जाय और चौड़ाई उसके मुकाबले में ७७.७ या उससे कम हो तो मानुषमिति वाले उसे दीर्घकपाल ( dolichocephalic ) नमूना कहते हैं. यदि चौड़ाई ८० तक हो तो मध्यकपाल ( mesocephalic ), और यदि और अधिक हो, तो ह्रस्वकपाल या घृत्कपाल ( brachycephalic ) । १०० लम्बाई पर जितनी चौड़ाई पड़े उसे कपाल-मान ( cephalic index ) कहा जाता है ।

इसी प्रकार एक नासिका-मान ( nasal index ) है । नाक की लम्बाई को १०० कहें, तो चौड़ाई जो कुछ होगी वही नासिका-मान है । वह मान जिनका ७० से कम हो, अर्थात् नाक नुकीली हो, वे सुनास ( leptorrhine ) कहलाते हैं. ७० से ८५ तक मध्य-नास ( mesorrhine ), और ८५ से अधिक वाले स्थूनास या घृथुनास ( platyrrhine ) । चौड़ी या नुकीली नाक के खुन्ने या तंग नथनों का अन्तर साधारण आँसू को भी मरलता से दीव्य बनाता है ।

दोनों आँसू के बीच में नाक के पुन का कम या अधिक उठान भी उसी तरह मनुष्य की मुखकृति में गूट नजर आता है । कई जातियों की नाकें ऊपर चिपटी सी होती हैं । नाक के उस चिपटेपन को संस्कृत में अबनाट<sup>१</sup> करते हैं, उससे उलटा प्रनाट और दोनों के बीच का मध्यनाट शब्द गड़ा जा

१. नले नासिकायाः संज्ञायाम् टाटप्रनाटम्भटवः, पाणिनीय  
अष्टाध्यायी, २, १, ११ ।

सकता है। दोनों आँखों की रैलियाँ जिन हड्डियों में हैं, उनके मध्य में दो बिन्दु लगा कर उनके बीच की दूरी को १०० कहा जाय, और फिर नाक के पुल के ऊपर से वही दूरी मापने से उसका पहला दूरी से जो अनुपात आय उसे अबनाट-मान (orbtonasal index) कहते हैं। वह ११० से कम हो तो अबनाट (platyopic) चेहरा, ११२.९ तक हो तो मध्यनाट (mesopic)। यह हिसाब खास भारतवर्ष के लिए रखा गया है, अन्यथा १०५.५, ११०.०, और उससे ऊपर, ये तीन सीमायें हैं। अबनाट का चेहरा स्वभावतः चौड़ा दीर्घता है, और गालों की हड्डियाँ उभरी हुईं।

आदमी का कद या डीङ्ग भी नानुपानिति को एक परस्पर है। २७० सतांशमीटर (५ फुट ७ इंच) से अधिक हो तो लम्बा, १६५ (५' ५") से १७० तक औसताधिक, १६० (५' ३") से १६५ तक औसत से नीचे, और १६० से कम हो तो नाटा।

मुँह और जबड़े का आगे बढ़ा या न बढ़ा होना एक और लक्षण है। एक प्रकार समहनु (orthognathic) है जहाँ जबड़ा मापे की सीध से आगे न बढ़ा हो या बहुत कम बढ़ा हो, दूसरा प्रहनु (prognathic) जहाँ वह बढ़ा हुआ हो।

संसार भर की जातियों में तीन मुख्य नमूने प्रसिद्ध हैं। एक गोरी जातियाँ, जिन में आर्य या हिन्द-जर्मन वंश, सामी (Semitic) और हामी (Hamitic) सम्मिलित हैं। सामी के मुख्य प्रतिनिधि अरब और यहूदी तथा कई प्राचीन जातियाँ हैं। हामी के मुख्य प्रतिनिधि प्राचीन निग्र (ईजिप्ट) के लोग थे। गोरे रंग के सिवा ऊँचा होल, भूरे या काले मुलायम सीधे या लहरदार केश, दाढ़ी-भूँड़ का खुला बगना, प्रायः दीर्घ कपाल, नुकीला चेहरा, नुकीली लम्बी नाक, सीधी आँखें छोटे दाँत और छोटा हाथ उनके मुख्य लक्षण हैं। गोरा रंग जलवायु



धील पड़ता है और रंग की पहचान को बिलकुल निरुद्धा नहीं कहा जा सकता।

स्योपरी की लम्बाई-चौड़ाई भी एक अच्छी परीक्षा है। एक पंजाबी या अन्तर्देशिय और एक बंगाली का सिर देखने में ही बंगाली का सिर चौड़ा दीर्घ पड़ता है। यदि स्योपरी की लम्बाई को १०० माना जाय और चौड़ाई उसके मुकाबले में ७७.७ या उससे कम हो तो मानुषमिति वाले उसे दीर्घकपाल (dolichocephalic) नमाना कहते हैं। यदि चौड़ाई ८० तक हो तो मध्यकपाल (mesocephalic), और यदि और अधिक हो तो द्रुमकपाल या घृणकपाल (brachycephalic)। १०० लम्बाई पर त्रिजनी चौड़ाई पर उसे कपाल-मान (cephalic index) कहा जाता है।

इसी प्रकार एक नासिका-मान (nasal index) है। अगर की लम्बाई को १०० कहें, तो चौड़ाई जो कुछ होगी वही नासिका-मान है। यह मान त्रिजना ७० से कम हो, अर्थात् नासिका नुकीली हो, वे सुनाम ( leptorrhine ) कहलाते हैं, ७० से ८५ तक मध्यनाम ( mesorrhine ), और ८५ से अधिक वाले द्रुपनाम या घृणनाम ( platyrrhine )। चौड़ी या नुकीली नासिका के सूत्रे या तंग नयनों का अन्तर माथारस्य अंग को भी पहचाना में दीर्घ माना है।

दोनों अर्थों के बीच में नासिका के पुष का कम या अधिक उन्नत भी उसी तरह मनुष्य की सुसंरचना में अन्तर माना जाता है। बड़े शक्तिशाली नासिका ऊपर खिंची भी होती हैं। नासिका के एक विस्तार को मंडुलन में अवरोध कहते हैं, इसमें अन्तःप्रवाह और दोनों के बीच का सम्बन्ध स्पष्ट गढ़ा जा

१. इन अर्थोंका अन्वय नैत्रनाः इन्द्रियसुखाय, अर्थवर्धन-  
अव्ययार्थ, २, १, १११

सक्ता है। दोनों आँखों की धैलियाँ जिन हड्डियों में हैं, उनके मध्य में दो शिन्दु लगा कर उनके बीच की दूरी को १०० कहा जाय, और फिर नाक के पुल के ऊपर से वही दूरी मापने से उसका पहली दूरी से जो अनुपात आय उसे अवनट-मान (orbitonasal index) कहते हैं। वह ११० से कम हो तो अवनट (platyopic) चेहरा, ११२.९ तक हो तो मध्य-नाट (mesopic)। यह हिसाब खास भारतवर्ष के लिए रक्खा गया है, अन्यथा १०७.५, ११०.०, और उससे ऊपर, ये तीन सीमाएँ हैं। अवनट का चेहरा स्वभावतः चौड़ा दीर्घता है, और गालों की हड्डियाँ उभरी हुईं।

आदमी का कद या शील भी मानुषमिति की एक परत है। १७० सतांशमीटर (५ फुट ७ इंच) से अधिक हो तो लम्बा, १६५ (५' ५") से १७० तक औसताधिक, १६० (५' ३") से १६५ तक औसत से नीचे, और १६० से कम हो तो नाटा।

मुँह और जबड़े का आगे बढ़ा या न बढ़ा होना एक और लक्षण है। एक प्रकार समहनु (orthognathic) है जहाँ जबड़ा माथे की सीध से आगे न बढ़ा हो या बहुत कम बढ़ा हो, दूसरा प्रहनु (prognathic) जहाँ वह बढ़ा हुआ हो।

संसार भर की जातियों में तीन मुख्य नमूने प्रसिद्ध हैं। एक गोरी जातियाँ, जिन में आर्य या हिन्द-अर्जन वंश, सामी (Semitic) और हामी (Hamitic) सम्मिलित हैं। सामी के मुख्य प्रतिनिधि अरब और यहूदी तथा कई प्राचीन जातियाँ हैं। हामी के मुख्य प्रतिनिधि प्राचीन निख (ईजिप्ट) के लोग थे। गोरे रंग के सिवा ऊँचा शील, भूरे या काले मुलायम सीधे या सहरदार केश, दाढ़ी-मुँह का खुला उगना, प्रायः दीर्घ कपाल, नुकीला चेहरा, नुकीली लम्बी नाक, सीधी आँखें छोटे दाँत और छोटा हाथ उनके मुख्य लक्षण हैं। गोरा रंग जलवायु

दीर्घ पड़ता है. और रंग की पहचान को बिलकुल निकम्मा नहीं कहा जा सकता।

सोपड़ी की लम्बाई-चौड़ाई भी एक अच्छी परख है। एक पंजाबी या अन्तर्बेदिये और एक बंगाली का सिर देखने से ही बंगाली का सिर चौड़ा दीर्घ पड़ता है। यदि सोपड़ी की लम्बाई को १०० माना जाय और चौड़ाई उसके मुकाबले में ७७.७ या उससे कम हो तो मानुषमिति वाले उसे दीर्घकपाल (dolichocephalic) नमूना कहते हैं. यदि चौड़ाई ८० तक हो तो मध्यकपाल (mesocephalic), और यदि और अधिक हो, तो दृग्कपाल या बृत्तकपाल (brachycephalic)। १०० लम्बाई पर जितनी चौड़ाई पड़े उसे कपाल-मान (cephalic index) कहा जाता है।

इसी प्रकार एक नासिका-मान (nasal index) है। नाक की लम्बाई को १०० करें, तो चौड़ाई जो कुछ होगी वही नासिका-मान है। यह मान जिनका ७० से कम हो, अर्थात् नाक नुकीली हो, वे सुनास (leptorrhine) कहलाते हैं. ७० से ८५ तक मध्य-नास (mesorrhine), और ८५ से अधिक वाले मधुननास या पृथुनास (platyrrhine)। चौड़ी या नुकीली नाक के सुजे या संग नयनों का अन्तर साधारण आँस को भी भरलना से दीर्घ माना है।

दोनों आँसों के बीच में नाक के पुन का कम या अधिक उठान भी उसी तरह अनुप्य की मुखकृति में झट नजर आ जाता है। कई जातियों की नाकें ऊपर चिपटी सी होती हैं। नाक के उभ चिपटेपन को मंस्कृत में 'अधनाट' करते हैं, उससे उलटा प्रनाट और दोनों के बीच का मध्यनाट शब्द गढ़ा जा

१. मते नासिकायाः संज्ञायां ईष्टवनाटवृषटवः, पाणिनीय अष्टाध्यायी, ५, १, ११।













के भेद से गेहूँवाँ भी हो जाता है। दूसरी पीली या मंगोली-जातियाँ हैं। उन में चीन-किरान, मंगोल, तातारी ( तुर्क-दूर ) आदि सम्मिलित हैं। उनके सीधे रूखे केश, बिना दाढ़ी-मूँछ के चौड़े और चपटे चेहरे, प्रायः वृत्त कपाल, ऊँची गाल की दूरी, छोटी और चिपटी नाक ( अचनाट ), गहरी आँखें, पलकों का झुकाव ऐसा जिससे आँखें तिरछी दीस पड़ें, तथा मध्यम दाँत होते हैं। तीसरा नमूना काला, हथियारों या नीग्रों ( Negroid )<sup>१</sup> नस्ल का है। उनके ऊन जैसे गुच्छेदार काले केश, दीर्घ कपाल, बहुत चौड़ी (स्थूल) चिपटी नाक, मध्यम दाढ़ी-मूँछ, मोटे बाहर निकले हुए होंठ, बड़े दाँत और मन्दा हाथ मुख्य लक्षण हैं। अफ्रीका के अतिरिक्त नीग्रों नस्ल प्रशांत महासागर के कुछ द्वीपों में है। भारतवर्ष में उनके प्रतिनिधि केवल अन्धमानी हैं जो अत्यन्त नाटे हैं। लेकिन वे वृत्त कपाल हैं।

उक्त तीन मुख्य नमूनों का उलटफेर दूसरी अनेक जातियों में है। कपालमिति (Craniology) के तज्जर्हों में यह पाया गया है कि एक ही वंश की कुछ शाखायें दीर्घकपाल और दूसरी वृत्तकपाल हो सकती हैं, लेकिन जिस का जो लक्षण है वह बहुत स्थिर रहता है। आर्य वंश में ही म्लाय और केल्ल लोग वृत्त कपाल हैं। पीली जातियाँ मुख्यतः वृत्तकपाल हैं परन्तु वे अफ्रीका के एग्जीमी दीर्घकपाल हैं।

भारतीय आर्य और द्राविड दोनों दीर्घकपाल हैं। अन्धमानी बंगाल और उत्तरपूर्वी सीमान्त पर वृत्तकपाल आर्य हैं। किरान प्रभाव के मूलक हैं। उसके मिश्रण मिश्र और दक्षिण भारत के पश्चिमी तट पर भी वृत्तकपाल हैं। अन्धमानी में मन्धकपाल।

१ नीग्रो ( )

अध्याय नवम १११



करना जरूरी है। या तो ऊँची ठंडी पहाड़ियों पर रहने और या पड़ोस के किरातों के मिश्रण के कारण उनका रंग-रूप शायदों से बहुत कुछ भिन्न हो गया है। उनका रंग प्रायः गौरा, गेहूँवाँ, या लाली लिए हुए घादामी, और भ्रियों का चेहरा विशेष कर सुन्दर गोलमटोल भरा हुआ होता है।

किरातों में वे सब लक्षण हैं जो हमने मंगोली नस्ल के कहे हैं। कद बहुत छोटा या औसत से कम, रंग पिन्नाइट लिये हुए, दाढ़ी-मूँछ न के बराबर, भालें निगल्ली, नाक नुकीली से चौड़ी तक मध किम्म की किन्तु चिपटी अचनाट, गाल की हड्डी उभरी हुई, और चेहरा नाक-गाल की इस अनावट के कारण चपटा।

उत्तरपच्छिम सीमान्त के अकगानों और पंजाब के जाटों आदि में आर्यावर्ती आर्यों की अपेक्षा विशेष लम्बी नाक पाई जाती है। अकगानों से मराठों तक पच्छिम की सब जातियों में वृत्त कपाल भी पाया जाता है। वृत्तरूपाल किरातों तथा पच्छिमी छोर के इन वृत्तरूपालों का मुख्य भेद यह है कि किरात जहाँ अचनाट है, वहाँ ये पच्छिमी जातियाँ अचनाट हैं। उत्तरपच्छिम की विशेष लम्बी नाक और समूचे पच्छिम के वृत्तरूपालों की व्याख्या शक मिश्रण से की जाती है। नई मोज ने बतलाया है कि शक भी एक आर्य जाति थे; आनकल उनका खालिस नमूना कर्ती नदी बचा, मध्य एशिया में वे टूलों-सुर्खों में पुनः मिल कर नष्ट हो गये हैं, और भारतवर्ष और ईरान में अपने इन्धु आर्यों में उनके मिश्रण आदि पर उनके जो चित्र मिश्रण हैं उनमें अमाधारण लम्बी नाक शकों का विशेष चिह्न हीन पड़वा है। वे टूनों के पड़ोस में रहते थे, या तो उनसे मिश्रण होने के कारण और या आर्यों की कई अन्य शाखाओं की तरह शायद वे वृत्तरूपाल थे। शकों की भाषा का कोई चिह्न भारतीय भाषाओं



दनों में आर्य झलक भर है। सिंहल के दक्खिन भाग में धि आर्य-द्राविड मिश्रण है।

भारतीय जनविज्ञान, मानुषमिति और कपालमिति का अध्ययन अभी बिलकुल आरम्भिक दशा में है। अभी इतिहास के अध्ययन को उममें वैसा प्रकाश नहीं मिल सकता जैसा भाषाओं की पढ़नाल से मिलता है। मोटे तौर पर भाषाओं की पढ़नाल हमें तिन परिणामों पर पहुँचाती है, जनविज्ञान और मानुषमिति उनमें विशेष भेद नहीं डालती।

### ६ ४७. भारतवर्ष की विविधता और एकता

भारतवर्ष एक विशाल और विस्तृत देश है। ऊपर के पृष्ठों में हमने उसकी भूमि और उस के प्रदेशों, उसकी भाषाओं, नस्ल, लिपियों, वर्णमाला और वाङ्मय का विवेचन और दिग्दर्शन किया है। उस दिग्दर्शन से उसकी विविधता प्रकट है। उसके विभिन्न प्रान्तों और प्रदेशों में से कोई समथर मैदान है तो कोई पठार या पहाड़ी दून कोई अत्यन्त सूखा रेगिस्तान है तो किसी में हृदय में ज्यादा पानी पड़ता है। अनेक हिस्सों में बल-वायु, वृक्ष-वनस्पति और पशु-पक्षी उममें पाये जाते हैं। उममें रहने वाले लोग, उनका रहन-सहन और उनकी बोधियं भी अनेक प्रकार की हैं।

भारतवर्ष के इन भेदों के रहते हुए उसमें गहरी एकता भी है। डिब्रूगढ़ से डेरा-इसमार्गलियाँ तक समूचा उत्तर भारत एक ही विशाल मैदान है। कसल के मौसम में हम उसके एक छोर से दूसरे छोर तक सहस्रहाते सेतों में ऐसे रास्ते से जा सकते हैं जिसे एक भी कंठर या पत्थर का टुकड़ा कष्टकित्त न करे। यह तो एकता देने वाली एकता है। इस के अतिरिक्त, दक्खिन में समुद्र और उत्तर में हिमाक्ष होने के कारण सारे भारत में एक आस हिम की अनुपपत्ति भी बन गई है। गर्मी की ऋतु में

समुद्र से भाप बादल बन कर उठती और हिमालय की तरफ जाती है ; हिमालय की उंचाई की बादल पार नहीं कर सकते, वे लीट कर घूम जाते हैं । इस प्रकार हमारी दरम्यात टोपी और नदियों में पानी आता है । दरम्यात के अनुसार और शत्रुओं जाती है । यह शत्रुओं का ग्याम मिलमिला भारतवर्ष में ही है, और हमारे सारे देश में एक सा है । भारतवर्ष की उस सुन्दर हृदयन्त्री का जिसके पारण समूचा देश स्पष्टतः एक हीय पड़ता है, पहले ही टल्लेख कर चुके हैं । हिमालय और समुद्र की उस हृदयन्त्री से ही शत्रु-पद्धति की ममानता पैदा होती है ।

भारतवर्ष की जनता की जांच में हमने देखा कि उसमें मुख्यतः आर्य और द्राविड दो नस्लों के लोग हैं ; किन्तु उन दोनों का सम्मिश्रण स्पष्ट हुआ है और उस मिश्रण में थोड़ा सा द्रौक शाबर और किरात का भी है । आज भारतवर्ष की कुल जनता में से आर्यभाषी अन्दाजन ७६४ फी सदी, द्राविडभाषी २०६ फी सदी, और शाबर-किरात भाषी मिलाकर ३० फी सदी हैं । किन्तु जनता और भाषाओं की विवेचना में हमने यह भी देखा कि द्राविड भाषायें आर्य सौंच में डल गई हैं, और उन्होंने आर्यावर्ती वर्णमाला अपना ली है । यह देश मुख्यतः आर्यों का है, और उन्होंने इसे पूरी तरह अपना कर इस पर अपनी संस्कृति की पकी छाप लगा दी है । दूसरी संस्कृतियाँ, विशेषतः द्राविड, नष्ट नहीं हो गईं, पर आर्यों के रंग में पूरी तरह रंगी गईं हैं । बाद में जो जातियाँ आती रहीं, वे तो बिलकुल आर्यों के अन्दर हजम ही होती गईं । आर्य और द्राविड का भारतवर्ष के इतिहास में इतना पूरा सामञ्जस्य हो गया है कि आज सारे भारत की एक वर्णमाला और एक बाळमय है, जो सभ्यता और संस्कृति की एकता का बाहरी रूप है । हम यो कह सकते हैं कि

भारतीय संस्कृति का प्राण भायें है तो उपादान द्राविड, और  
आज उन दोनों को अलग नहीं किया जा सकता । भारतीय  
संस्कृति एक है, और इसलिए भारतीय जाति एक है ।

किन्तु यदि भारतीय जाति एक है तो उसकी एकता आज  
उसके सामाजिक और राजनैतिक जीवन में प्रकट क्यों नहीं  
होती ? भारतवर्ष के प्रदेशों, भाषाओं और जनता की विविध  
अवस्था की ध्यानपूर्वक से जहाँ हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं  
कि यहाँ संपात्मक राष्ट्रीय एकता की बढ़िया सामग्री उपस्थित है,  
वहाँ उसकी विद्यमान राजनैतिक और सामाजिक अवस्था पर  
जो कोई एक नज़र भी डालेगा उसे दीर्घ पढ़ेगा कि उसकी  
जनता में जातीय या राष्ट्रीय एकता का सर्वथा अभाव है । ऐसा  
जान पड़ता है कि वह बत्तीस करोड़ का जम्पट मानो तुल्य  
जातों फिरकों और कबीलों का एक ढेर है, जिस समूचे ढेर में  
अपनी एकता का कोई चेतन्य और सामूहिक जीवन की कोई  
वेदना नहीं है । बहुत लोग इस स्थिति को देख कर कह देते हैं  
कि यह एक देश और एक जाति नहीं है । तो फिर क्या वह  
छोटे छोटे प्रदेशों या कबीलों का समुच्चय है ? क्या उन छोटे छोटे  
प्रदेशों में भी, जिनमें भौगोलिक और अन्य दृष्टि में पूर्ण एकता  
है, सचेष्ट सामूहिक जीवन के कोई लक्षण हैं ? यदि किसी छोटे  
से प्रदेश में भी वह उत्कृष्ट सचेष्ट सामूहिक जीवन होता तो  
वह अपनी स्वाधीनता को संसार की बढ़ी से बढ़ी शक्ति  
के मुकाबले में भी बनाये रख सकता । यह बात नहीं है कि  
भारत में छोटे छोटे जीवित समूह हों और उन सबको मिला कर  
जिस जन-समुदाय को भारत कहा जाता है उसी में एकता का  
अभाव हो । सामूहिक जीवन की मन्त्रता न केवल उस समूचे  
समुदाय में प्रत्युत उसके प्रत्येक टुकड़े में भी वैसी ही है ।

जब इन भारतीय जनता की विद्यमान अवस्था की  
 कर रहे हैं, तब इन बात को धार्यों से ओम्हा कैसे कर  
 है कि आज संसार की सब सभ्य जातियों के बीच यहाँ  
 मात्र मुख्य गुलाम जनता है ? और उसके उस गुलाम  
 पर जरा सा विचार करने से भी यह स्पष्ट दृश्य पड़ता  
 भारतवर्ष के लोग न केवल जातीय चैतन्य से रहित हैं, प्र  
 साधारण मनुष्य-धर्म से भी वे एकदम पवित्र हो चुके हैं। उ  
 आत्म-सन्मान का भाव तो मानो नर ही चुका है। उनके सना  
 की रचना ऐसी है जिससे आपस में अपने से कमजोर पर उ  
 उत्तम करने और उपद्रव के आगे गिड़गिड़ाने की उन्हें आ  
 ही हो जाती है, और इन आदत के कारण पराई गुलामी  
 हुए का बोझ भी उनके कंधों को कुछ नाज़ूक नहीं होता। दुन  
 का साधन बनने और उसे कमजोर का शिकार कर ला देने में  
 उन्हें विल भर संकोच नहीं होता; उनका अपना कोई ध्येय, कोई  
 साध्य, मुख्य नांसारिक सुखों के सिवाय और अपनी जान-दिरादरी  
 का टिकने के मुख्य शायरों में अपने को उंचा मान नहने और  
 कमजोरों को धार्मिक दिये करने के सिवाय कुछ है ही नहीं।  
 यदि इन नांसारिक सुखों से भी उन्हें बाँधित कर दिया जाए तो  
 भी वे संगठन के अभाव, साहस की कमी और कायरता के  
 कारण विरोध में नहीं उठ सके होते, मनुष्य ऐसी दरिद्रता और  
 गलाबज में 'शान्ति' और 'सत्याग्रह' के साथ अपने 'जीवन'  
 को—अथवा अपनी दोस्तों मर्या को—पलायन जा सकते हैं कि  
 जिसे इन बर विराजत करना बाधन होता है। ऐसी अवस्था में  
 भी वे आपस में मिस नहीं करके, कलहें इन्हे अपने पर  
 आशय और एक दूसरे पर विराजत नहीं है।

मनुष्य कहकरन व... क उन अवस्था में हर किसों के  
 म... बनने बनने 'अन्य' बनना बनना निरुपे मयं है है,



सामूहिक हित और कल्याण का चिन्तन करने वाला, समूचे समूह में एक व्यक्तित्व माने और सामूहिक आपत्तियों का निवारण करने वाला कोई अंग उममें है ही नहीं। इसी कारण अपने समूह का भेद पराये को देना, उसके साथ मिल कर अपने समूह के विरुद्ध आचरण करना और पराये का साधन बनना यहाँ ऐसी नि शंकता निर्लज्जता और उदरहता से होता है जैसा संसार की और किसी जाति में नहीं हो सकता। न तो ऐसे काम करने वाला स्वयं इन बातों में कोई पाप मानता है, न उसके पड़ोसी उसे पृष्ठा से देखते हैं, और यदि उसके पास पैसे हों—जो कि इन कामों से हमारा मिल जाते हैं—तो वह उसी समूह में जिसके विरुद्ध कि वह आचरण करता है पेंट पेंट कर बिपर सकता है। सबसे बड़ा अचरज तो यह है कि ऐसा पृष्णित दग्ध जीवन बिनाते हुए भी वे लोग अपने दिव्य को भुलाने के लिए लोक-परलोक और आत्मा-परमात्मा की पर्था कर क अपने को बड़ा धर्मात्मा मान सकते हैं, ठीक उसी तरह जैसे एक गंजेड़ी गलीब गन्गी में धँसा हुआ दूर दूर के मयने देखता है।

इस अवस्था का कारण क्या है ? भारतीय इतिहास और समाजशास्त्र का प्रत्येक विचारशील विद्यार्थी मुँह में कहे का न करे, कुछ न कुछ कारण इस अप्राकृतिक अवस्था का अवगमन में सोचता है, और उसी के अनुसार भारतीय इतिहास की व्याख्या करता है। बहुतों का यह विरवाम प्रतीत होता है कि भारतीय नस्ल में या जलवायु में कोई मनाजन प्रैकाक्षिक दुर्बलता है। यदि ऐसी बात है, यदि सामूहिक जीवन इस भूमि या इस नस्ल में कभी पनप ही नहीं सकता है, तो एकना की यह उत्प सामग्री तिमहा हमने उतर जले न किया है क्या केवल पुराधर न्याय में पैदा हो गई है ? चेतन और निरन्तर सामूहिक घेष्टायो

के बिना वे व्यवस्थाएँ कभी उत्पन्न न हो सकती थीं। किन्तु वैसी सामूहिक चेष्टाओं के रहते फिर विद्यमान दरिद्रता कैसे आ गई ?

इन्हीं समस्याओं का उत्तर पाने के लिए हमें भारतीय इतिहास की सावधानी और सचाई से छानबीन करने की जरूरत है। यहाँ इस विवाद को विस्तार के साथ नहीं उठाया जा सकता, केवल संक्षेप से और आग्रह के बिना मैं अपना मत फाँट देता हूँ। भारतवर्ष का प्राचीन इतिहास—लगभग ५५० ई० तक—एक खिन्दा जाति के सचेष्ट जीवन का धृतान्त जान पड़ता है। भारतीय मध्यता और संस्कृति की दृढ़ नींवें उसी काल में रखी गईं। उसके बाद मध्य काल में धीरे धीरे भारतीय जाति की जीवन-धारा मन्द हो गई, उसमें प्रवाह और गति न रही। प्रवाह के अभाव से सड़ोद पैदा होने लगी, और सड़ोद से कमजोरी। अनेक प्रकार के सचेष्ट और जीवित आर्थिक व्यावसायिक राजनैतिक सामाजिक और धार्मिक आदि समूह, जिनके समुच्चय से वह जाति बनी थी, पधरा कर निर्जीव और अचल जातें बनने लगे, और प्रवाह गति तथा पारस्परिक विनिमय ज्यों ज्यों और क्षीण होते गये, त्यों त्यों उन जातों के और दुकड़े होते गये, और एक सजीव जाति का पधराया हुआ पंजर बाँधी रह गया जिसे कि जात-पात में जकड़ा हुआ विद्यमान भारतीय समाज सूचित करता है। ऐसा निर्जीव समाज-संस्थान बाहर के हमलों का मुकाबला न कर सकता था और इसके वे परिणाम हुए जिनका होना कभी टल न सकता था।

किन्तु ध्यान रहे कि वह समाज-संस्थान रोग का निदान नहीं प्रत्युत लक्षण है, असल रोग तो जीवन की क्षीणता और गति का घन्द हो जाना ही है। वह समाज-संस्थान एक प्राथमिक समाज की समस्या को सूचित नहीं करता, प्रत्युत एक परिपक्व समाज के जीर्ण पधराये सूख गये देह को; और इसी



के इतिहास... (The text is extremely faint and illegible, appearing to be a historical or philosophical passage.)

इति... (A short line of text, possibly a section header or a specific reference.)

एतत्... (The main body of the text is very faint and illegible, consisting of several paragraphs of what appears to be a treatise or a long letter.)



ये हेमाद्रि पदादियां उंगल सहस्रपत्र  
हे प्रथ्वी हम को कर दे सुख-दान प्रमत्त ।

द्विस्तरे भूतदूर्ध्व पुरुषों ने मफल विचे विषम के कान,  
द्विस्त पर देवों ने अनुसुरों को जीना अपना कर परा नाम,  
द्विस्तरे धेनु अरव-भार पत्नी करते हैं सुख-भोग निवाम  
तेज मौन हम को कर देगी वह भू षड्भगी सविलास ।

इसी प्रकार अगले काल में फिर वे कहते थे—

पुत्रपरलोक प्रतापी उनको धनदाते हैं देव उदार  
स्वर्ग-सुखि-दाता भारत में जन्में जो मनुष्य-जन धार ।

धर्म और संस्कृति के आचार्यों की तरह, कालिदास जैसे कवियों ने भी भारतीय एका का आदर्श धनाये रक्खा । कर्मठ राजनीतिज्ञ, सैनिक, योद्धा और शासक वस आदर्श को किस प्रकार परिचर्य करने का उत्तम करते रहे, जो भारतवर्ष का इति-हास बतलाता है ।

१ गिरिल्ले पर्वता शिखरतोऽग्रं ठे दृषिषि स्तोत्रमस्तु ।

—वही १२. १. ११ ।

२ दत्ता पूर्णं दूर्ध्वं विचक्षिरे दत्ता देवा अनुरागस्यर्वापम् ।

सर्वान्पदान् दत्तस्य विहा मां बर्षे दृषिषी मे श्याम् ॥

—वही १२. १. १२ ।

३ जन्मि देव विहा ममकानि श्याम्पु मे भावमन्मिभार ।

मातापितृभ्याः शर्मामिभूत् सर्वान्पदान् दत्तः साधवात् ।

—विष्णु पुरा १. १. १३ ।

१. १३. १३ २. ३३३ ३. १. १३३ ४. १३३ ५. १३३

§ ४६. उसकी अपने पुरखों और उनके ऋण की याद

अपनी मातृभूमि को वक्त प्रकार से अपने पुरखों की कर्म स्थली के रूप में याद करना अथवा अपने देश के साथ साथ अपने पुरखों की याद करना राष्ट्रीय एकता और इतिहास की एकता का दूसरा आवश्यक लक्षण है।

केवल भूमि की ममता से, उसे अपना देश और एक देश समझने से, इतिहास में एक-राष्ट्रीय जीवन पैदा नहीं होता, जब तक कि उस भूमि में अपने से पहले हो चुके पुरखों की अनेक पीढ़ियों को भी ममतापूर्वक अपना सम्झ कर याद न किया जाय, और अपने बाद आने वाले वंशजों की पीढ़ियों के लिए भी वही ममता अनुभव न की जाय। क्योंकि इतिहास एक मनुष्य समाज के किसी एक समय के स्वदे जीवन का ही वृत्तान्त नहीं है किन्तु अनेक पीढ़ियों की सिलसिलेवार और परम्परागत जीवन-धारा का चित्र है। और पिछली पीढ़ियों का जीवन-कार्य और धरित हमारे जीवन के प्रत्येक पहलू में बुनियाद के रूप में विद्यमान है।

हम जरा सा भी सोचें तो हमारे पुरखों का हम पर कितना पहचान दीप्तता है! अपने देश की यह जो शकल आज हम देखते हैं यह वन्ही की मेहनत का नतीजा है। त्रिस भूमि से हमें अपना भोजन मिलना और जो हमें रहने के लिए शरण देती है, उसे पहले पहल उन्हीं ने अपने मुन्नबल से जीता और शेती के साधक बनाया था। आज भी दो बार बरस हम उमड़ी सम्भाल करना छोड़ दें तो जंगली घाम और बूटियों उमें पैर लें और जंगली वन्तु उस पर मँडराने लगें! भारतवर्ष की हरी भरी भूमि त्रिसमें आज हजारों लाखों शेज, बर्गाचे, ताजाइ नहरें, गाँव, बस्तियाँ, राहर, राम्ते, किल्ले, कारखाने, राजधानियाँ, बाजार और बन्दरगाह विद्यमान हैं, कमी इसी

वरह के ढरावने जंगलों से घिरी थी, और उसे हमारे पुरखों ने साक़ किया और बसाया था। प्रत्येक पीढ़ी प्रयत्नपूर्वक उसकी सम्भाल और रक्षा न करती आय तो उसे फिर जंगल घेर लें या पराये लोग हथिया लें। सार यह कि अपने देश की जो बाह्य शक्त आज हमें दीख पड़ती है, वह हमारे पुरखों के लगातार अनथक परिश्रम और जागरूकता का फल है।

और क्या केवल बाह्य भौतिक वस्तुओं के लिए हम अपने पुरखों के ऋणी हैं ? हमारे समाज-संगठन, हमारी प्रथाओं और मंस्थाओं, हमारे रीति-रवाजों, हमारे जीवन की समूची परिपाटी नहीं नहीं, हमारी भाषा, हमारी बोलचाल और हमारी विचारशैली तक पर हमारे पुरखों की छाप लगी है। जिन विद्याओं और विद्वानों को सीख कर आज हम शिक्षित कहलाते हैं उनके लिए भी तो हम उन्हीं के ऋणी हैं।

यह ऋण का विचार धार्मिक रंग में रंगा हुआ हमारे देश में बहुत पुराना चला आता है। हम पर देवों, पितरों, ऋषियों और मनुष्यों का ऋण है,—ऋषियों का ऋण हमारे ज्ञान की पूंजी के रूप में—और उस ऋण को चुकाने का उपाय यह है कि हम अपनी सन्तति पर वैसा ही ऋण 'बढ़ा' दें ! लेकिन पूर्वजों का ऋण वंशजों को दे कर चुकाया जा सकता है इस विचित्र कल्पना से सूचित होता है कि पूर्वजों और वंशजों के सिलसिले में एक साँता—एक धाराबाहिक एकात्मकता—जारी है। ऋण पाने

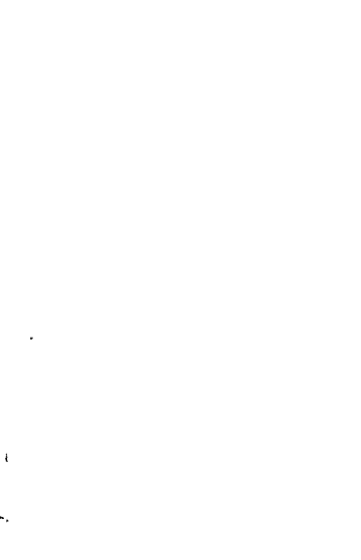
1. बाद में केवल तीन ऋण गिने जाते थे, पर शुरु में चौदा—मनुष्यों या पदोसियों का—भा. भा. दे० नानपथ ब्राह्मण १ ।

यहाँ यह विचार अपने सर में पड़ने रूप में शर्ज है।





परिशिष्ट



१.

## प्राचीन भूगोल-विषयक नई बातें

—:६:—

### (१) कम्बोज देश

प्राचीन भारत के इतिहास में कम्बोज एक बहुत प्रसिद्ध देश था। किन्तु आज तक उसकी ठीक पहचान नहीं हुई थी। उसकी ठीक रिनास्त करने का कितना महत्त्व है यह इसीसे प्रकट होगा कि इस परिशिष्ट में शुक्तिमान् पर्वत के सिवाय प्राचीन स्थानों की कितनी पहचानें की गई हैं, उन सबकी कुंजी कम्बोज की पहचान से ही मिली है, और प्राचीन भूगोल और इतिहास के अनेक पुँषले परद उसकी पहचान से स्पष्ट हो गये हैं।

यूरो ने नेपाली अनुसृति के अनुसार कम्बोज को तिब्बत का कोई भाग माना है<sup>१</sup>, किन्तु डा० प्रियर्सन दिल्ली पुके हैं कि वह कोई न कोई ईरानी आर्य-भाषी प्रदेश था। इसीलिए माधारण्यया विद्वान लोग कम्बोज का अर्थ पूरबी अरगानिस्तान करते हैं। किन्तु पूरबी अरगानिस्तान के एक एक प्रदेश की यह हम पूरी ध्यानपूर्ण करते हैं तो कम्बोज को उनमें से किसी पर भी नहीं बैठा सकते। मध्य-घाटी से अशरौदी-तीरा तक पक्य देरु था, फिर कापुल नदी के उत्तर कपिरा और गान्धार। कम्बोज का ज्यों ने से किसी का समानार्थक रहा हो सो कोई नहीं कहता।

१. आर्यशास्त्राणां सूत्राणि ( बीर प्रतिमा-कृष्ण ), पृ० ११४, विष्णु ग्रन्थ का अर्थ हिन्दुओं की दृष्टि से पृ० १११ पर निर्देश।





अरब भूगोल-लेखकों के अनुसार वह धामू की धाराओं बंधन ( आधुनिक बंध ) और अक्साब ( आधुनिक अक्सू या सुगार ) के बीच का क्षेत्र था । उस की सीमा 'सल्वा-प्रदेश की उत्तरी बन्धी सीमा के साथ साथ सटी हुई है ।

कहण ने कम्बोज और तु X स्यार के नाम अलग अलग दिये हैं । चीनी इतिहास-लेखक बताते हैं कि 'ताहिया' लोग पहले चीन के कानसू प्रान्त की पच्छिमी सीमा पर रहते थे, फिर वे बंधु-कोटे में आये हा० मार्कॉट के मत है कि चीनियों के ताहिया और अरबों के सुस्यार एक ही हैं । इस प्रकार सुस्यार लोग बंधु-कोटे पर दूसरी शताब्दी ई० पू० के करीब आये, और तब से उसका नाम तु X स्यार-देश या सुस्यारिस्तान पड़ा । कम्बोज और तु X स्यार तब एक दूसरे के पर्याय हो गये, और नये नाम ने पुराने को दबा दिया । मोझोर, पामीर, बश्करा, ममी किमी सबय तु X स्यार-देश में सम्मिलित थे । बाद जब 'युद्धी' का बंधु-माघ्राण टूट गया, तब केवल बश्करा का नाम तु X स्यार रह गया । इस प्रकार कम्बोज और तु X स्यार दोनों नाम प्राचीन कम्बोज के तु X स्यार के दो टुकड़ों के नाम रह गये ।

किन्तु कम्बोज शब्द का टीक अर्थ बहुत अमाने तब भूल न गया था, जो इस प्रसिद्ध कारमी पद्य में प्रकट होता है—

। अरब अरब-रु रित्रास फलद से अरबम हय हय मीरी  
दुई अरबी, शेषम कम्बोज मंगम बन्धान कारमी।

\* कम० कम्बोजको अरबम—इस शेषम का अर्थ अरब १०१

अरबम अरबम से ही अरबम । इतरवम अरबमको १०१







भूगोलवेत्ता निरचय से न जानते थे कि विष्णु की बाह्यो ब्रह्म-  
पुत्र की उतरती धारा है या शरावती या सात्वती की ।

### (३) किरात

कन्दोद और उनके पड़ोस की गंगा के पहचाने जाने पर-  
मैत्रेय ऋषि के अनुसार खु के उत्तर-दिग्विजय के बाकी रान्ने को  
टोड़ने का इतन किया । उस रात्ते में गंगा के बाद किरातों का  
उल्लेख है । कन्दोद से खु का रात्ता कारकोरम जोर तक था ,  
उत्तके आगे के किरात निरचय से लदाख या नरमुत्त के निष्कती  
से; सोचैर में कालिदास के मनय तक निष्कती न थे । पुराणों  
में स्पष्ट लिखा है कि भारतके पूर्वोद्धार के स्लेच्छ किरात थे ।  
यहां कालिदास ने निष्कतियों के लिये वही शब्द चर्चा है, जिनसे  
स्पष्ट है कि किरात शब्द ठीक आधुनिक निष्कतवर्मी के अर्थ में  
चला था ।

### (४) उत्तर-मङ्गल और किन्नर

किरातों का देश लॉपने के बाद खु की 'पर्वतीय गरलों में  
गौर लड़ाई हुई' जहां 'उत्तर-मङ्गलों की विरतोत्तर कर के उत्तने  
किन्नरों से अपने विजय के गीत गवाये' । उत्तके बाद वह  
कैलाश पर्वत गये बिना हिमालय से उतर आया । अन्तिम  
यात्र में सूचित होता है कि किन्नरों का देश हिमालय की गर्भ-  
मृन्मला में और कैलाश के पश्चिम था । वह लदाख के परती  
तरफ भी नहीं हो सकता . महाभारत में अर्जुन के उत्तर-  
दिग्विजय में भी किन्पुत्रों के देश के बाद गुह्यको का हाटक

१ खुवम ४, ३६

२ खुपु पु० १ ४२, ८० विष्णु पु० २, ३ ५, ६० उत्तरः ४४ ।

३ खुवम, ४, ३३—८०



और पूर्वी भारत का सम्बन्ध पुराणों में भी परिचित है<sup>१</sup>। इससे यह प्रकट है कि आधुनिक भाषा-पड़ताल ने कनौरी, याद्या आदि बोलियों की आग्नेय भाषाओं से जो सगोत्रता खोज निकाली है, उसे प्राचीन भारतवासी भी पहचानते थे। उस पहचान का एक और प्रमाण भी मुझे मिला है। टालमी के भूगोल में मत्त-यान की खाड़ी से मलक्का की समुद्रसन्धि<sup>२</sup> तक के समुद्र को 'सिनस् महरिकस्' कहा है। उस समुद्र के तट पर सुवर्णभूमि के मोन या तलंग लोग रहते थे, उसके ठीक सामने भारत के पूरबी तट पर तेलंगण और शबरी नदी है। इस प्रकार पूर्वी भारत के आग्नेयदेशी शबरों और सुवर्णभूमि के आग्नेयदेशी मोनों, दोनों के लिए शबर शब्द का प्रयोग किया गया दीखत है, जिससे न केवल यह प्रकट होता है कि उनकी सगोत्रता सात थी, प्रत्युत ऐसा भी जान पड़ता है कि शबर शब्द आग्नेयदेशी स्वन्ध की दोनों शाखाओं—मुण्ट और मोन-खेर—के लिए, या दोनों के विशेष अंशों के लिए सामान्य रूप से वर्त्ता जाता था।

शिबर = कनौर शिनाख्त की धेरी-अपदान की निम्नलिखित गाथाओं में भी, जिन में धेरी माना के एक पहले किररी-जन्म की कहानी है, पुष्टि मिलती है—

पन्दभागानदी-तीरे अहोमि शिबरी तदा ।

अथऽहसं देवदेवं पद्मन्तं नरामभम् ॥ इत्यादि<sup>३</sup> ।

१. अ० अ०, पृ० २६० ।

२. समुद्र-सन्धि = अहमदा, Straits। यह सुगर शब्द आधुनिक लिपि का अन्वय के नीचे लिखा है, और मुझे हिन्दी 'अहमदा' से बड़ी कल्पना लगती है ।

३. धेरी-तलावा पर आग्नेयदेशी अहमदा परमाण्वदी-तीरे में उद्धृत, एहि ईश्वर होलाएँ संवत्स. ६० ४२-४४ ।

पन्द्रमागा का छोन कनौर के पच्छिमी किनारे पड़ता है ।

‘उत्सव-सकेतो’ का नाम किन्नरो’ के भाष आया है, तथा किगलो’ और किन्नरो’ के नाम के बीच । इससे मैं यह परिणाम निकालना हूँ कि वे लक्ष्य और कनौर के बीच की कनौरी-बाँधी की छोटी छोटी बोलियाँ—मनचाटी, भाहुली, बुनान, रंगलोई, कनाशी—बोलने वालों के पूर्वज थे । पार्सीटर ने रघुवंश की एक टीका से उस शब्द की जो व्याख्या उद्धृत की है<sup>१</sup> उस से प्रकट होता है कि ‘उत्सव-सकेत’ उनका नाम न था, प्रत्युत एक समाजशास्त्रीय परिभाषा थी, जो उन जातियों के लिए प्रयुक्त होती थी जिनमें विवाह-बन्धन स्थापित न हो, और खुली प्रमिश्रण ( promiscuity ) या अनावरण<sup>२</sup> जारी हो—सकेत करने से कोई स्त्री या पुरुष ‘उत्सव’ के लिए आ सकता हो । विवाह-बन्धन की शिथिलता उक्त जातियों में आज तक है, जिस बात से मेरी सिनाख्त को और भी पुष्टि मिलती है ।

(५) कालिदास के अनुसार भारतवर्ष की सीमायें, और उसका भारत की राष्ट्रीय एकता-विषयक आदर्श

रघु के उत्तर-दिग्विजय का मार्ग इस प्रकार टटोल चुकने पर मुझे यह हीस्य पड़ा कि कालिदास ने भारत की उत्तरी और पच्छिमी सीमायें रघु के दिग्विजय के बहाने हूबहू वहीं बतलाई हैं, जो मैंने आधुनिक भूगोलशास्त्र, जनविज्ञान और भाषाविज्ञान के आधार पर निरिचत की हैं ! यह ध्यान देने की

१. मार्कण्डेय पुराण का अनुवाद, पृ० ३१९ ।

२. अनावरण शब्द हमारे पुराने वाक्य में प्रमिश्रण के अर्थ में आता है, जैसे—अनाकृताः किञ्च पुरा सिष्य आमान् बरानने ( महाभारत १, १२८, ४ ) ।

यात है कि रघु के समूचे दिग्विजय में संक्षेप की खातिर केवल सीमान्त देशों के नाम आये हैं, किन्तु उनसे भारत की पूरी परि-  
 क्रमा हो गई है। इस पुस्तक में कही गई भारत की सीमाओं  
 और कालिदास की सीमाओं में केवल इतना अन्तर है कि  
 कालिदास ने सिंहल को भारत में शामिल नहीं किया। अन्यथा  
 रघु के दिग्विजय के वर्णन से यह स्पष्ट है कि उस क्रान्तदर्शी  
 महाकवि की प्रतिभा ने भारत की भौगोलिक और जातीय एकता  
 का अनुभव किया है, और उसे एक आदर्श के रूप में चित्रित  
 किया है। यह माना जाता है कि वह गुप्त सम्राटों के आदर्श से  
 अनुप्राणित था। क्या उलटी बात नहीं हो सकती कि गुप्त  
 विजेताओं को उसके आदर्शवाद ने अनुप्राणित किया हो ? और  
 उसकी प्रतिभा ने विक्रमादित्यों के कर्तृत्व को जगाया हो ?

### (६) मौर्य-साम्राज्य की उत्तरी सीमा और अशोक का स्वातन पर अधिकार

मौर्य-साम्राज्य की उत्तरी सीमा अब तक हेरात से पन्डे-भाषा  
 और हिन्दूकुश के साथ साथ मानी जाती है, और हिमालय के  
 अन्दर कहाँ तक थी इस विषय में कुछ स्पष्ट नहीं कहा जाता।  
 अब कम्बोज की शिनाख्तन में वह हिमालय और हिन्दूकुश के पार  
 रंगकुल भील तक पहुँच गई। कम्बोज मौर्यों के 'विजित' में था।

स्वातन और भारत की अनुभूति बतलाता है कि स्वातन  
 अशोक के अधीन था, और उसी के समय वहाँ पहला भारतीय  
 उपनिवेश बना। इस धान की मचाई पर अब तक बहुत  
 सन्देह किया जाता रहा है, पर अब वह सच निकल आय तो  
 कुछ भी अचरज न होगा, कारण, कम्बोज की पूर्वी सीमा से  
 स्वातन तक घोंड़े की पीठ पर चार-पाच रोज में पहुँचा जा  
 सकता है।

पन्द्रमागा का स्रोत कनौर के पच्छिमी किनारे पड़ता है ।

उत्सव-संकेतो का नाम किन्नरो के साथ आया है, व किन्नो और किन्नरो के नाम के बीच । इससे मैं यह परिण निकालता हूँ कि ये लक्ष्म और कनौर के बीच की कनौरी की छोटी छोटी बोनियाँ—मनचाटी, साहूली, युनान, रंगल कनारी—बोत्तने बाको के पूर्वज थे । पार्सीटर ने रघुवंश पृष्ठ टीका में उस शब्द की जो व्याख्या उद्धृत की है । उस शब्दट होना है कि 'उत्सव-मद्देन' उनका नाम न था, प्रत्युत सम्राजराज्याय परिभाषा थी, जो उन जानियों के लिए प्रयु होनी थी जिनमें विवाह-बन्धन स्थापित न हो, और सुली प्रभगा (promiscuity) या अनाशरण जारी हो—गो करने में कोई स्त्री या पुरुष 'उत्सव' के लिए आ सकना है । विवाह-बन्धन की शिथिलता उक्त जानियों में आत तक जिन बात में मेरी शिनाख्त को और भी पुष्टि मिलती है ।

(५) कालिदाम के अनुसार भारतवर्ष की सीमाएँ और उमका भारत की राष्ट्रीय एकता-विषयक आदर्श

रघु के उत्तर-दिविजय का मार्ग इस प्रकार टटोल पुर पर मुझे यह दीन पड़ा कि कालिदाम ने भारत की उत्तर और पच्छिमी सीमाएँ रघु के दिविजय के घटाने दृष्ट कर बनाई है, जो मैंने आधुनिक भूगोपशास्त्र, जनविज्ञान के आधुनिक विज्ञान के आधार पर 'नाशयत की है' यह ध्यान देने

१. उत्सव-संकेतो का अर्थ उत्सव १० ११  
२. उत्सव-संकेतो का अर्थ उत्सव १० ११  
३. उत्सव-संकेतो का अर्थ उत्सव १० ११

बात है कि रघु के समूचे दिग्विजय में संक्षेप की खातिर केवल सीमान्त देशों के नाम आये हैं, किन्तु उनसे भारत की पूरी परि-  
 क्रमा हो गई है। इस पुस्तक में कही गई भारत की सीमाओं  
 और कालिदास की सीमाओं में केवल इतना अन्तर है कि  
 कालिदास ने सिंहल को भारत में शामिल नहीं किया। अन्यथा  
 रघु के दिग्विजय के वर्णन से यह स्पष्ट है कि उस क्रान्तदर्शी  
 महाकवि की प्रतिभा ने भारत की भौगोलिक और जातीय एकता  
 का अनुभव किया है, और उसे एक आदर्श के रूप में चित्रित  
 किया है। यह माना जाता है कि वह गुप्त सम्राटों के आदर्श से  
 अनुप्राणित था। क्या उलटी बात नहीं हो सकती कि गुप्त  
 विजेताओं को उसके आदर्शवाद ने अनुप्राणित किया हो ? और  
 उसकी प्रतिभा ने विक्रमादित्यों के कर्तृत्व को जगाया हो ?

### (६) मौर्य-साम्राज्य की उत्तरी सीमा और अशोक का खोजन पर अधिकार

मौर्य-साम्राज्य की उत्तरी सीमा अब तक हेरात से बन्दे-बाघा  
 और हिन्दूकुश के साथ साथ मानी जाती है, और हिमालय के  
 अन्दर कहाँ तक थी, इस विषय में कुछ स्पष्ट नहीं कहा जाता।  
 अब कम्योज की शिनाख्त से यह हिमालय और हिन्दूकुश के पार  
 रंगकुल झील तक पहुँच गई ! कम्योज मौर्यों के 'विजित' में था।

खोजन और भारत की अनुभूति बतलाती है कि खोजन  
 अशोक के अधीन था, और उसी के समय वहाँ पहला भारतीय  
 उपनिवेश बसा। इस बात की सच्चाई पर अब तक बहुत  
 सन्देह किया जाता रहा है, पर अब यह सच निकल आय तो  
 कुछ भी अचरज न होगा, कारण, कम्योज की पूर्वी सीमा से  
 खोजन तक घोंड़े की पीठ पर चार-पाँच रोज में पहुँचा जा  
 सकता है।





वहीं कहा जा सकता। कुलिन्द और प्राग्ज्योतिष के बीच केपल तीन देश प्रतीत होते हैं—पहला सात्वपुर जिसका राजा सात्वराज युमत्सेन था, फिर कट-देश जिसपर सुनाभ राज्य करता था, और तीसरे शाकलद्वीप जिस में सात द्वीप या दोभाच शामिल थे और अनेक राजा राज करते थे। शाकल-द्वीप इस प्रकार एक लम्बा प्रदेश था। नेपाल का नाम न होना एक उल्लेख-योग्य बात है। अभी हम देखेंगे कि यह समूचा सन्दर्भ १७६ ई० पू० के बाद का नहीं हो सकता। इस प्रकार दूसरी शताब्दी ई० पू० के शुरू में प्राग्ज्योतिष का राज्य स्थापित हो चुका था, पर 'नेपाल' नाम प्रचलित न हुआ था।

( ३ ) ऋन्नागिरि, महिगिरि, उपगिरि; 'उत्क', साहित,  
तुन्द और चोल

दूसरी यात्रा जो दूसरे अध्याय में है, कुलिन्द से उत्तरपच्छिम की है, क्योंकि उसमें फरनीर, कम्बोज आदि के नाम हैं। शुरू में ही कहा है कि अर्जुन ने अन्तर्गिरि, महिगिरि और उपगिरि को जीता ( ३ )। मेरे विचार में ये जातिवाची शब्द हैं जिनका अर्थ है—गर्म-शृंखला, मध्य शृंखला और बाह्य शृंखला। आगे विवरण है। पहले उसने भारी युद्ध के बाद 'उत्क'-वासी बृहन्त को जीता ( ५-६ )। फिर सेनाबिन्दु के राज्य को आसानी से अधीन कर ( १० ) तथा मोदापुर और 'सुदाना सुसंकुल' को ले कर वह उत्तर 'उत्क' देश को पहुँचा ( ११ ), और वहाँ छावनी डाल कर अपने आदिमियों को 'पञ्च गलों' को जीतने भेजा ( १२ )। फिर सेनाबिन्दु की राजधानी देवप्रत्य को सौट कर वहाँ छावनी डाली ( १३ ),— स्पष्ट है कि वह स्थान उत्तर और दक्खिन 'उत्क' के बीच कहीं

१. कोसों में शोलों की संख्याएँ हैं।

पर था। वहाँ से राजा पौरव के किले पर चढ़ाई की (१४), और वीर पहाड़ियों को हरा कर उसे जीता (१५)। तब सब 'दस्यु' उन्मत्तसङ्घेत गणों को फासू किया (१६), और करमीर तथा लोहित के दस मयडलों के विजय के लिए प्रस्थान किया (१७)।

उक्त नामों में से उत्सव-सङ्घेत हमारे पूर्व-परिचित है, और बाकी मय भी करमीर के पूरव होने चाहिये। मेरे विचार में 'उल्लुक' 'कुल्ल' (कुल्लू) का अपभ्रंश है। यदि ऐसा हो तो पौरव का राज्य सम्भवतः चम्पा में रहा होगा। सुशामा पर्वत का नाम रामायण २, ६८, १८ में अयोध्या से केकय जाने वाले सन्देश-हरो की यात्रा में भी आना है। उसमें प्रतीत होता है कि वह व्यास नदी के नजदीक कहीं था। हमारे हिसाब से भी उमें वहीं होना चाहिये। 'सुसंकुलम्' का मूल रूप कहीं 'सुसंकटम्' तो नहीं है? सकट माने जोत या घाटा।

करमीर और लोहित के रास्ते में त्रिगर्चा (कांगड़ा), शर्ष (दुगर) और कोकनद ने स्वयं अर्जुन की अधीनता मान ली (१८), पर अभिमागी (क्षिप्राल) और 'उरगा' (उरशा या हजारा) मुद्गावले के बिना अवीन न हूए (१९), और मिहपुर (नमक-पहाड़ों के प्रदेश की राजधानी) तो भारी युद्ध के बाद हाथ आया (२०)। इन नामों में से कोकनद के सिवाय सब परिचित हैं।

लोहित मेरे विचार में रोह या अरुणागानिमान है, क्योंकि आगे चारुद्रीक या चरुण्य का उल्लेख है (२२), और चरुण्य का रास्ता रोह में से ही हो सकता था।

१. वसुमन्धेव वाजरीकान् (वाजीकान् ?) सुशामानं च पर्वतम् ।

विष्णोः वरं प्रेशमाना विष्णोः चापि वाक्यमीम् ॥

विष्णुवद वर पहाड़ या त्रिष वर महरीली बाकी राजा चरुण्य की छोटे की कट वरके गादी गई थी।













राज्यसमीप लक्ष परलो सामन्तारीविषयः । यदि षाष्ट लीला  
ना, ना सामन्तारी विषय करी हो सकता है ।

( १० ) शुक्तिमान् पर्वत

शुक्तिमान् पर्वत विषयक विवाद बहुत पुराना है । कर्णिक  
दास और बगलर ने उमें शुक्तिमती नदी का जन्मदाता मान कर  
कमरा श्वाभारत बन्तर बीच की पर्वतशृंखला तथा द्वाकै  
बाग क बन्तर क पहाड़ माना था<sup>१</sup> । पार्सीटर ने सिद्ध किया कि  
शुक्तिमती कन नदी का नाम है, परन्तु हमका शुक्तिमान् पर्वत  
ए काइ सम्बन्ध नहीं है । मार्कण्डेय पुराण में शुक्तिमती का  
प्रात 'शुक्ति' शब्द का कथा है, और सभी पुराणों में शुक्तिमान्  
ए शब्दका वही नामकी जा परिगणना है जममें शुक्तिमती  
का नाम नहीं है । पार्सीटर को अभिमत सम्मति यह थी कि  
शुक्तिमान् का अर्थ गांग और स्वामी-त्रयन्तिया पहाड़ करना चाहिए,  
क्योंकि महाभारत में नाम के पूर्व विभिन्नत्व में शुक्तिमान् का  
नाम है और पूर्व में और काइ शृंखलाय पहाड़ हैं नदी<sup>२</sup> ।

इसके बाद डॉ० रामरामन्द्र मजूमदार ने शुक्तिमान् की  
सुक्तिमान् पहाड़ का गिनाकत की है । शुक्तिमान् से निकलने  
वाली नदीका क नाम पुराणों में इस प्रकार दिये हैं—

शुक्तिमान् मुकुमती च मण्डगा मण्डवादिनी ।  
द्वया पलाशना चैव शुक्तिमन्वमवाः शृणाः ॥ (वा३)

१. कर्णिकदासीरकक सर्वे लिपिर् १०, १० ११, १२; ४, १  
१२१ १२२ ।
२. मार्कण्डेय पुर का मजुषाद पृ० १८२, १८६, १८६ ।
३. दृमती लीलाय कावचाल कन्दोस ( कल्प-विद्या सुम्बेकर )  
कलकत्ता का विषयक पृ० १०१ लिपि ।

ऋषिकुल्या कुमारी च मन्दगा मन्दवाहिनी ।

कृपा पलाशिनी..... ( मार्कण्डेय )

मत्स्य में 'ऋषिका' और 'पलाशिनी' के बाजाय 'काशिका' और 'पारिनी' पाठ है। हा० मजूमदार का कहना है कि कृपा = कुभा (काबुल नदी), कुमारी = कुनार, मन्दगा या मन्दवाहिनी = हेलमन्द, पारिनी = पंजशीर, ऋषिकुल्या = इसिकला = यूनानियों की एबुः अस्पला जो कि सिन्ध के पच्छिम की हिन्दूकूश से निकलने वाली कोई धारा थी। साथ ही उनका कहना है कि शुक्तिमान् नाम हिन्दूकूश से दक्खिन तरफ भारत के पच्छिमी सीमान्त की समूची पर्वतशृंखला का है जिसमें केवल एक अंश में अथ वह सुलेमान रूप में पाया जाता है।

भीम के पूर्व-दिग्विजय में शुक्तिमान् का नाम, उनका कहना है कि, गलती से आ गया है, जैसे अर्जुन के उत्तर-दिग्विजय में सुन्ध, चोल और प्राग्ज्योतिष का नाम गलती से है, या नकुल के पश्चिम-दिग्विजय में उत्सव-संकेतों का गलती से। प्राग्ज्योतिष को उत्तर में गिनने में क्या गलती है, सो मुझे समझ नहीं आया। सुन्ध और चोल का उत्तर में परिगणन गलत है सो यावत हमारी पहली अज्ञान की दशा में कही जा सकती थी, रघु-दिग्विजय वाला लेख भेजते समय तक मैंने उसे अज्ञानवश गलत कहा था, किन्तु बाद जब मुझे उत्तरी सुन्ध और चोल का पता सूझा तब मैंने एक परिशिष्ट भेज कर उसे ठीक किया। उत्सव-संकेतों का नाम पच्छिम में होने में कुछ भी गलती नहीं है, क्योंकि उत्सव-संकेत केवल एक मनाजशास्त्रीय पारिभाषिक शब्द है, उस किस्म की कोई जाति पच्छिम में भी रही हो सो सम्भव है। यह बात पार्सीटर पहले ही दिखला चुके हैं। तो भी भीम के पूर्व-दिग्विजय में शुक्तिमान् का नाम क्यों और कैसे है, उसकी व्याख्या



और सुलेमान में भेद नहीं कर सकते, इससे केवल यही सूचित होता है कि भौगोलिक विषयों को हमारे देश में अभी तक बहुत हलकेपन से हथियाया जाता है।

मैं शुक्तिमान् पर्वत की कोई शिनाख्त अभी तक निश्चयपूर्वक नहीं कर सकता, किन्तु उस सम्बन्ध में एक दो बातों की तरफ मुझे ध्यान दिलाना है। एक तो यह कि महेन्द्र आदि 'कुल-पर्वत' हैं। और कुल-पर्वत तथा मर्यादा-पर्वत (मीमान्त के पर्वत) ये दो शायद प्राचीन भारतीय भूगोल की भिन्न भिन्न परिभाषायें हैं। दूसरे

महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमान् ऋतुपर्वतः  
विन्ध्यश्च परियात्रश्च सप्तैवे कुलपर्वताः,

इस परिगणन में एक क्रम है। महेन्द्र दक्खिन भारत के उत्तर-पूर्वी छोर पर है, वहां से हम पूरव तट के साथ दक्खिन चलेते हैं, नालमलइ मे एलामलइ-आनमलइ तक सय पर्वत मेरे विचार में इस परिगणन के मलय में सम्मिलित हैं। फिर पच्छिमी तट के साथ उत्तर घूम कर हम सह्य का साथ पकड़ते हैं। ऋतु पर्वत सह्याद्रि के उत्तरी छोर से पच्छिम से पूरव भारत के आरपार चला गया है। फिर उनके पूरवी छोर से उत्तर घूम कर विन्ध्य और उस के आगे परियात्र है। स्पष्ट है कि शुक्तिमान् सह्य और ऋतु के बीच कहीं होना चाहिए। या तो वह सह्य के उत्तरी छोर या ऋतु के पच्छिमी छोर पर हो, किन्तु वहां गुंजाइश नहीं के बराबर है। इसलिए मेरा कहना है कि शुक्तिमान् हैदराबाद-गोनकुंडा वाले पठार का नाम है, जो पूरवी घाट (महेन्द्र, मलय) और पच्छिमी घाट (सह्य) के बीच आर दोनों में अलग है। उस पठार की नदियां में से नव में प्रसिद्ध नूना है। मुझे ऐसा रसना होता है कि 'ऋपट्टा' वाल्म्व में मूषका का अपराध है। पेटवगु दिन्दी, कागना और मुन्तामारी में है

कोई एक सुष्ठुगारी हो सकती है; मुल्तामारी कागना की शाखा ही है। मन्दागा तब शायद मानेर हो, मन्दादिनी मुनेक, और पलाशिनी या वाशिनी पाजेर या फल्लोर। इस प्रकार नदियों का परिगणन भी एक क्रम से होगा। कृपा या कूपा का अन्दाज मैं नहीं कर सका।

मैंने यह रिनाउन सभी तब आरखी है, क्योंकि शुक्तिमान् पर्वत विपक्व कुल निर्देशों का मुलनामक अध्ययन अभी तब मैंने नहीं किया।

# भारतवर्ष की राष्ट्रभाषा, राष्ट्रलिपि, राष्ट्रीय वर्णमाला और परिभाषायें; तथा कुछ प्रान्तों की भाषा-लिपि-समस्या



(१) हमारे देश के भाषाविषयक ऐक्य-अनैक्य का प्रश्न

जिन लोगों के मन में भारतवर्ष के अनैक्य का विचार घर कर गया है वे उसकी भाषाओं की बहुतायत की प्रायः दोहाई देते हैं; दूसरी तरफ़ बड़े जतन से सिद्ध किया जाता है कि उसकी एक राष्ट्रभाषा है, और उसके कई पक्षपाती यहां तक सपना लेते हैं कि किसी दिन सब प्रान्तिक भाषाओं का वही स्थान ले लेगी। इस प्रश्न का एक तरफ़ जहाँ भारतवर्ष के इतिहास की व्याख्या से सन्बन्ध है, वहां दूसरी तरफ़ बड़ा व्यावहारिक महत्त्व भी है, जिससे इम वाद-विवाद में प्रायः गर्मी आ जाती है। अनैक्यवादियों का कहना है कि भारतवर्ष की सैकड़ों भाषायें हैं, और उसकी पुष्टि में वे भाषाविज्ञानियों का मत उद्धृत करते हैं; दूसरी तरफ़ ऐसा कहने वाले भी हैं कि समूचे उत्तर भारत, विध्य-मेखला महाराष्ट्र और उड़ीसा की एक ही भाषा है, और बाकी सब उसकी बोलियां मात्र हैं। भाषाविज्ञानियों की पढ़ताल के परिणामों को ठीक ठीक समझने का शोनों तरफ़ से जतन नहीं होता, और इसलिए व्यर्थ में विवाद बढ़ता है।

भारतवर्ष की वर्त्तमान भाषाओं की पूरी वैज्ञानिक पढ़ताल सर ज्योर्ज प्रियर्सन ने पिछले चालीस बरस लगातार की है, उन

जैसा प्रामाणिक विद्वान् इस विषय का इस समय शायद दृढ़ता कोई नहीं है। उनके हिसाब से भारतवर्ष में कुल १७९ भाषायें और ५४४ बोलियाँ हैं। सन् १६२१ की गणना में वर्मा-सहित भारत की कुल १६६ भाषायें और ४६ बोलियाँ गिनी गईं थीं। इन संख्याओं को देख कर पहला प्रश्न यही सामने आता है कि भाषा और बोली का लक्षण क्या है? दोनों में क्या भेद है? यों तो हर बीस कोस पर बोली बदल जाती है, नहीं नहीं, हर आदमी की बोली उसके पड़ोसी से कुछ बदलती है, पर बोलों का पूरा बदलना किसे कहते हैं? और भाषा की भिन्नता की क्या पहचान है?

भारतीय भाषा-पड़ताल में इस विषय की विवेचना डा० ग्रियर्सन ने इस प्रकार की है—'सैंचुरी' कोष में भाषा और बोली का भेद यों किया गया है कि एक भाषा को अनेक बोलियाँ वे हैं जिनमें परस्परावबोधता हो, जिनमें से एक के बोलने वाले दूसरी को आप से आप समझ लें, किन्तु जहाँ एक वाणी के बोलने वाले जतन कर के सीखे बिना दूसरी को न समझ सकें वहाँ उन दोनों को भिन्न भिन्न भाषायें कहना चाहिए। किन्तु उत्तर भारत की आर्य भाषाओं पर ये लक्षण ठीक नहीं पड़ते, वहाँ परस्परावबोधता भाषा-भेद की सदा कसौटी नहीं होती, क्योंकि बंगाल से पंजाब तक प्रत्येक नाम को शिक्ति व्यक्ति भी दुभाषिया है, और हिन्दी या हिन्दुस्तानी समझ सकता है। दूसरे उस समूचे देश में तथा राजपूताना, मध्य भारत और गुजरात में भी जनता का समूचा शब्दकोष जिसमें साधारण वर्ताव के लगभग सब शब्द हैं उच्चारण-भेदों को छोड़ कर एक ही है; इसलिए यह कहा और समझा जाता है कि बंगाल और पंजाब के बीच एक ही भाषा हिन्दी है, जिसकी बहुत सी स्थानाय बोलियाँ हैं। एह दृष्टि से यह ठीक है। किन्तु निरुक्तशास्त्र की दृष्टि से





व्यावहारिक अन्तर हो—जैसे बंगला और आसमिया का—  
 वहाँ भी वे भाषा की भिन्नता मान लेते हैं। मैंने व्यावहारिक  
 भेद, अर्थात् जातीयता के भेद, को ही मुख्य कमौटी माना है।  
 यही कारण है कि जातीय भूमियों या स्वाभाविक प्रान्तों का  
 बँटवारा करने समय मैंने अथवा को मैदान के पहाड़ी हिन्दी-  
 प्रदेश के साथ मिला देने और युन्देलखण्ड-बघेलखण्ड को  
 परम्पर मिला देने में संकोच नहीं किया। समूचे भारत की एकता  
 एक संघात्मक एकता है। उसके स्वाभाविक प्रान्त एक एक  
 स्वतन्त्र जीवित अंग हैं और उनमें से कुछ को छोड़ कर बाकी  
 की जो स्वतन्त्र भाषायें हैं उनका पूरा विकास होना चाहिए।

क्योंकि भारतीय भाषा-पड़ताल की संख्याओं का बाजार  
 विवादाँ में दुरुपयोग किया जाता है, इसलिए प्रसंगवश यह स्पष्ट  
 कर दें कि डा० मियर्सन की १७९ भाषाओं में से ११३ किरात  
 ( तिब्बतवर्मी ) परिवार की हैं। हम देख चुके हैं कि किरात और  
 आग्नेय-भाषियों की कुल मिला कर संख्या भारतीय जनता में  
 सैकड़ों बीड़ों केवल तीन है। इसीलिए जहाँ १७ आर्यावर्ती  
 भाषाओं के बोलने वाले २२ करोड़ ६० लाख हैं वहाँ किरात  
 भाषाओं में से प्रत्येक के औसतन बोलने वाले १७ हजार हैं।  
 उनमें से भी नागा पहाड़ों में कुल २९ नागा भाषायें हैं जिनमें से  
 प्रत्येक के औसतन बोलने वाले ११३ हजार हैं! सब मिला कर  
 नागा-भाषियों की आवादाँ दिल्ली शहर की तीन चौथाई है!

हिन्दी को लोग पिछले कुछ समय में भारतवर्ष की 'राष्ट्र-  
 भाषा' के रूप में पहचानने लगे हैं। वह भारतवर्ष के सब से  
 मुख्य और केन्द्रिक कम से कम चार प्रान्तों ( अन्तर्बेद, बिहार  
 चोदकाशल गजस्थान ) का व्यावहारिक प्रान्तीय भाषा है।  
 अन्य कई प्रान्तों में भी वह मृगमत्ता से समझी जाती है। 'राष्ट्र'

भाषा' का अनुवाद अंग्रेजी में 'लिंगुआ फ्रांका' किया जाता है। उसके सम्बन्ध में डा० प्रियर्सन कहते हैं—'ठीक ठीक कहे तो लिंगुआ फ्रांका एक दोगली बोली होती है जो कि एक नाना-जातीय भाषा के तौर पर बर्ती जाती है। किन्तु हिन्दुस्तानी यद्यपि एक नानाजातीय भाषा के रूप में बर्ती जाती है, तो भी वह दोगली नहीं है। मुझे कोई दूसरा सुगम अंग्रेजी शब्द मालूम नहीं है जो कि अभीष्ट अभिप्राय ( उसकी स्थिति ) को लगभग ठीक दिखला सके।" ( वहाँ, पृ० १६४ टि० २ )

मैंने जो हिन्दी-भाषियों की कुल संख्या १३ करोड़ कृती है वह मुख्यतः बिहारी, पूरबी हिन्दी, पड़ोही हिन्दी, राजस्थानी, भीली और मध्य तथा पच्छिमी पहाड़ी की संख्यायें जोड़ने से बनती हैं। सन् १९२१ की गणना में इनमें से बहुत सी भाषाओं की संख्यायें असल से कम हैं, और पड़ोही हिन्दी की असल से अधिक, क्योंकि भिन्न भिन्न प्रान्तों में बहुत लोगों की बोली खाली 'हिन्दी' लिखी गई है जिससे पड़ोही हिन्दी समझी गई है। किन्तु इस प्रकार की गलती का होना ही सिद्ध करता है कि इन सब प्रान्तों की व्यावहारिक भाषा एक है, और साधारण जनता व्याकरण-शास्त्रियों के घरोक भेदों को नहीं समझती। उक्त भाषा-भाषियों की कुल संख्या ११, ४२, ६५, १७५ आती है। उनके अतिरिक्त पंजाब की भाषा के विषय में विवाद है। कोई पंजाबी को हिन्दी की बाली-भात्र मानते हैं, कोई स्वतन्त्र भाषा। इस कारण मैंने उक्त संख्या में पूरबी पंजाब की पंजाबी बोली के अंक मिला दिये हैं और पच्छिमी पंजाब की हिन्दी के नहीं मिलाये हैं, पंजाबी के वे अंक भी कुछ गनन तथा अधिक हैं, क्योंकि बहुत से हिन्दी बोलने वाले उनमें गिने गये हैं। पंजाबी की संख्या मिला देने में हिन्दी-भाषियों की कुल संख्या १३,०५,२८७ बनती है। ध्यान रहे कि डा० प्रियर्सन के मत में इसके अतिरिक्त गुजराती-

भाषियाँ का शब्द-कोष भी उच्चारण-भेदों के सिवाय हिन्दी का ही है। हिन्दी और सिन्धी के विषय में भी वही बात कही जा सकती है। मर अर्किन पेरी ने १८५३ ई० में जब पहले पहल विश्वमान भारतीय भाषाओं का वर्गीकरण किया था<sup>१</sup> तब उन्होंने उन दोनों को भी हिन्दी की बोलियाँ ही गिना था।

इतनी बड़ी संख्या या इससे अधिक संख्या संसार में शायद कोई एक और किसी भाषा बोलने वालों की होगी। उनमें से एक अंग्रेजी है, जो एक शक्तिशाली साम्राज्य की भाषा है; और उसके बोलने वालों की संख्या भी पिछले दो सौ बरस में ही इतनी बढ़ी है। दूसरी तरफ़ बिना किसी राजकीय महारे के एक दलित दरिद्र दास जाति की भाषा होते हुए भी हिन्दी के बोलने वाले १३ करोड़ हैं, क्या यह भारतीय जाति की गहरी प्रसुप्त आन्तरिक एकता का उज्ज्वल प्रमाण नहीं है ? और क्या यह हमारे पुर्खों की शताब्दियों तक भारतवर्ष को एक राष्ट्र बनाने की चेतन चेष्टाओं का फल नहीं है ? आधुनिक हिन्दीभाषियों ने अपनी भाषा या संस्कृति को व्यापक बनाने की कोई वैसी चेष्टा नहीं की; उनकी आज की व्यापकता केवल इस कारण है कि वह उन भाषाओं की वंशज है जिनके बोलने वाले शताब्दियों पहले भारतवर्ष को एक राष्ट्र बनाने की चेष्टा करते रहे हैं।

## (२) नागरी लिपि और भारतीय वर्णमाला

ध्यान रहे कि हिन्दी भाषा जितनी व्यापक है, नागरी लिपि उससे कहीं अधिक व्यापक है। उसे हिन्दी के अतिरिक्त मराठी, पर्वतिया और मरुत, तथा कभी कभी पंजाबी और सिंधी

<sup>१</sup> जॉन डि ग्रीप्रार्किन्स हिन्दू व्युत्पन्न ओफ़ दि प्रिन्सिपल लैंग्वेज

ओफ़ इण्डिया ( भारतवर्ष का प्रथम भाषाशास्त्र का भौगोलिक वर्गीकरण )

ज० एम्बेड् प्राध ग० प० म० जनवरी १९००



नागरी में निकल जाने से उसका उमसे दूना प्रचार हो जायगा दूसरे, श्रीगुरु-ग्रन्थ-साहेब के, जो समूचे पंजाब और सिन्धु पड़ा जाता है। आश्चर्य है कि अभी तक नागरी में उसका कोई अच्छा संस्करण नहीं हुआ, क्योंकि उसकी बहुत थोड़ी बाणियाँ पंजाबी भाषा या बोली में हैं, अधिक बाणियाँ पुरानी हिन्दी ही हैं, और कुछ मराठी में भी।

दूसरी बात नागरी की पूर्णता के विषय में। उसकी जी खोल प्रशंसा संसार भर की वर्णमालाओं के विद्वान् 'दि आल्फाबेट' (वर्णमाला) के लेखक सर आइजक टेलर तथा अरिस्तो पेरी जैसे व्यक्ति ने की चुके हैं। किन्तु हमें उस प्रशंसा से फूल न जाना चाहिए। भारत वर्ष की तथा भारतीय वर्णमाला वर्तने वालों बाहर की आधुनिक भाषाओं और बोलियों के सब उच्चारण प्राचीन संस्कृत वर्णमाला के नागरी रूप में ठीक ठीक प्रकट नहीं हो पाते। उदाहरण के लिए 'कैवल्य' के संस्कृत ऐ (अइ) तथा 'सैठक' के हिन्दी ऐ (अय) हम एक ही तरह लिखते हैं, इसी तरह 'गौर' और 'घौर' के 'ग' और 'घौ' को। चीनी, तिब्बती, कर्मीरी और परतो में च् के बजाए एक दया हुआ उच्चारण त् और स् के बीच होता है, अंग्रेजी बाणियाँ वैसे लिखते हैं, जिसे अनजान हिन्दी लेखक 'त्स' समझ कर वैसा ही लिख डालते हैं, जैसे 'इनेन त्सांग' ! वह उच्चारण मराठी में भी है जहाँ वह 'च' ही लिखा जाता है। क्यों न उसके लिए एक अलग संकेत हो ? इस प्रकार तिब्बती, तेलगु, सिंधी आदि में ह्रस्व एकार और ओकार हैं। ह्रस्व ए हिन्दी में भी है, जैसे छाँपर ( लड़की ) लेखन ( लेखनी ) कुकड़ ( मुँह कुकड़ी ) आदि शब्दों में। अंग्रेजी के उसी उच्चारण को प्रकट करने के लिए नागरी वालों को बड़ा परेशान होना पड़ना है। क्यों न उसके लिए तेलगु की तरह एक अलग संकेत हो ? इस प्रकार के अन्य चिन्हों की भी जरूरत होगी, जिनमें से कुछ केवल

विद्वानों के काम आयेंगे और कुछ सर्वसाधारण के भी। किसी प्रामाणिक संस्था द्वारा उनके प्रकाशित होने की आवश्यकता है। उन के बिना नागरी को भारतीय वर्णमाला के समान व्यापक बनाने का सपना कभी सफल न होगा।

### (२) उर्दू

भारतीय वर्णमाला की तरह भारतीय परिभाषाओं की एकता भी बहुत व्यापक है, और भारतीय एकता के प्रश्न में उसकी तरफ पहले पहल इस पुस्तक में ध्यान दिलाया जा रहा है। जनता में विज्ञान का प्रचार होने के लिए पारिभाषिक शब्द, जहाँ तक ठेठ बोलचाल की बोली के हो सकें उतना अच्छा, किन्तु ऊँची परिभाषाएँ समूचे भारत के लिए संस्कृत-पालि की ही होंगी।

ध्यान रहे कि जब हम समूचे भारत की एक वर्णमाला और समान परिभाषाओं की बात कहते हैं, तब उर्दू हमारे फयन का अपवाद होती है। इन अंशों में उसका भारत की सब भाषाओं से विरोध है, किन्तु दूसरी तरफ उसकी रीढ़ और बुनियाद उस बोली से घनी है जो भारत की राष्ट्रभाषा है। हिन्दी में जो तत्सम शब्द हैं वे प्रायः बंगला मराठी गुजराती तेलगु आदि अन्य भारतीय भाषाओं के समान हैं, और तद्भव शब्द उन से जुदा। उर्दू के तद्भव शब्द ठीक हिन्दी के हैं, किन्तु तत्सम वह फारसी-अरबी से लेती है। इस प्रकार भारतवर्ष की दूसरी भाषाओं से न उसके तद्भव मिलते हैं, न तत्सम। हिन्दी वालों के लिए जहाँ वह केवल एक शैली का भेद है, वहाँ दूसरी भाषाओं वालों के लिए वह सोलह आना विदेशी भाषा और लिपि है। हिन्दी-उर्दू का यह भेद उन साधारण तत्सम शब्दों में ही प्रकट होने लगता है जो प्राथमिक शिक्षा में या रोज के व्यवहार में काम आते हैं। नमून के लिए हिन्दी 'समत्रिबाहु त्रिभुज' के लिए बंगला मराठी तेलगु आदि में या तो ठीक वही शब्द या मिलता



नें, सिन्धी भाषा अमल में गुजराती रंगत लिये सिन्धी टै. सिन्धी के पञ्जाब गुजराती को अपना लिया है। सिन्धी ने अपना वह प्रदेश उदागतापूर्वक गुजरात को सौंप दिया है। दुमरे. सिन्धी का अपने पड़ोस और दूर की सभ भारतीय भाषाओं— पड़ोस की हिन्दी, गुजराती और मराठी से, तथा दूर की बंगला वगैरा सभी भाषाओं—से सम्बन्ध नहीं हो सकता। इन भाषाओं के वाङ्मय-विकास के लिए आपस का आदान-प्रदान बितना आवश्यक है, सो करने की जरूरत नहीं। मारवाड़ का थर और कच्छ का रन सिन्धी को शीघ्र भारत से उस तरह अलग नहीं कर सकते जैसे अरबी अक्षर ! तीसरा और सबसे घुरा परिलान एक और हुआ है। अरबी अक्षर भारतीय शब्दों भारतीय नामों और भारतीय विचारों को पकट करने के लिए उरयुक्त नहीं हैं। भारत-वर्ष के तमान विद्यमान प्रान्तिक वाङ्मयों की सुनियारें दो हैं; एक तो संस्कृत या पालि वाङ्मय जिनके अनुवादों के आधार पर प्रत्येक नई भारतीय भाषा पहले पल खड़ा होती है, दूसरे पच्छिमो जगन् की नई विषयों और विज्ञान जिनके विचारों को अपना कर भारतवर्ष के तमान देसी वाङ्मय पुष्ट हो रहे हैं। किन्तु जैसा कि हम देख चुके हैं भारतवर्ष की नई भाषायें पारचात्य विद्याओं और विज्ञानों को भी संस्कृत या पालि ही सहायता के बिना नहीं अपना सकती, उन्हें अपनाने के लिए परिनायाओं की जरूरत होती है जो संस्कृत या पालि के धातुओं से ही ढाली जाती हैं। जो भाषा उन परिभाषाओं को न लेगी वह तुच्छ आरम्भिक ज्ञान में आगे न बढ़ सकेगी। सिन्धी इन दोनों महारों को खो बैठी है। अभी तक उसका वाङ्मय बिलकुल आरम्भिक दशा में है, और अब भी अपना नाम बदल लेना उसके लिए बहुत सुगम है। सिन्धी के आत्मन लोको महा-राष्ट्र के चित्रावन प्राणियों की तरह भारतवर्ष को सपसे





वाङ्मय के विकास-मार्ग में वही बड़ी रुकावट बनी हुई है जो सिन्धी की राह में है। फिर गुरमुखी लिपि का भी पंजाब पर पूरा अधिकार नहीं हुआ, नागरी और गुरमुखी दोनों साथ साथ चलती हैं, यद्यपि एक को जानने वाला दूसरी को घंटे दो घंटे में सीख सकता है, इसलिए बहुत लोग दोनों जानते हैं। कांगड़ा और चम्बा के पहाड़ी प्रदेश में शारदा का विकार टकरा ( मध्यकालीन टकरा देश अर्थात् स्यालकोट-प्रदेश की ) लिपि चलती है।

पंजाबी का वाङ्मय बहुत ही साधारण है। गुरु-ग्रन्थ-साहेब का पाठ वहाँ सब से अधिक होता है, पर उसका अधिकांश पुरानी हिन्दी में है; थोड़ा सा अधिक प्रचलित अंश पंजाब की बोलियों में है—उपवी पंजाबी में तथा जन्मसाखी पंजाबी-घुली हिन्दीकी में।

मेरा पहले यह मत था कि पंजाब की शिक्षा-दीक्षा की भाषा हिन्दी होनी चाहिए, किन्तु अब मैं 'पंजाबी' के पक्ष में हूँ। 'पंजाबी' से मेरा अभिप्राय 'पूर्वी पंजाबी' या नैरुक्तों की पंजाबी से नहीं जिसे एक भाषा बनाने का भरसक जतन हो रहा है, प्रत्युत उस बार की बोली से है जहाँ गुरु नानकदेव ने जन्म लिया था, और जो पंजाबी तथा हिन्दीकी के ठीक घोल को सूचित करती है, जिसमें कि जन्मसाखी लिखी गई है। मैं यह समझता हूँ कि पंजाबियों को भारतवर्ष की राष्ट्रभाषा से परिचित होने की अपेक्षा भारतीय वर्णमाला से परिचित होना अधिक आवश्यक है, वह उद्देश हिन्दी की अपेक्षा उनकी अपनी बोली द्वारा अधिक सुगमता से पूरा हो सकता है, इसी-लिए नागरी लिपि में पंजाब की बोली का एक भाषा के रूप में विकास होना, मेरी दृष्टि में, पंजाब के लिए हितकर होगा।

## (६) कपिश-करमीर की

पंजाब की तरह कपिश-करमीर की भी समस्या है। इस समूचे प्रदेश में करमीरी ही सुगमता से साहित्यिक भाषा बन सकती है, और पिछले चालीस एक परस से उसे पैसा बनाने का जतन भी हो रहा है। किन्तु अभी तक वह जतन सुन्न कर नहीं किया गया, और उस हगमगाइट के कई कारण हैं। करमीर में संस्कृत का राज रहा है, वह संस्कृत अध्ययन का सदा केन्द्र रहा है। शुरू में नई दुनिया का संसर्ग होने पर नये व्यवहार के लिए जब एक भाषा की जरूरत हुई तो करमीरियों का ध्यान संस्कृत की ओर ही गया। पिछले महाराजा ने आरम्भ में युरोपियन कौली कयायद के शब्द भी संस्कृत में तैयार करवा के जारी कराये थे<sup>१</sup> ! किन्तु संस्कृत इस जमाने की व्यावहारिक भाषा न बन सकती थी, और अब करमीर पर बर्द-हिन्दी का शासन चल रहा है। करमीरी की स्थिति वहाँ पंजाब में 'पंजाबी' की तरह है। उसकी स्थिति को वहाँ रह कर अपनी आँसों रोक कर ही मैं अपनी अन्तिम सम्मति बना सकूँगा, तो भी शिक्षाक मेष यह मत है कि करमीरी बोली को वाङ्मय-सम्पन्न भाषा बनाने का पूरा जतन होना चाहिए, और यद्यपि पिछले समय में करमीर में संस्कृत का पढ़ना-लिखना शारदा लिपि में होता रहा है, तो भी नई करमीरी भाषा को नागरी में लिखना ज़रूरी करना चाहिए।

## (७) अफगानिस्तान की

अफगानिस्तान में फारसी ने परतों को चिन्नकुल रहा रक्ता है। परतों<sup>२</sup> एक टिन्दा जानदार भाषा है, और उसमें कुछ वाङ्मय

१. उनका मंसूर का बुका है।

२. परतों और फरतों एक ही भाषा की दो बोलियाँ हैं। दोनों में अन्तर नाम का, बरक बोड़े से उचारणों का है। वह अफगान-भेद उप

भी है। उसमें ऊँचे विचारों का प्रकाशन आसानी से हो सकता है, और उसका पूरा वाङ्मय-विकास होना चाहिए। इस समय फारसी को प्रधानता देने के कारण अफगानस्थान की जातीय एकता भी बनी नहीं रही, और उसकी तथा भारतवर्ष की ठीक जातीय सीमायें बतलाना भी कठिन हो गया है। परतो के उद्धार से वह समस्या बहुत कुछ सुलझेगी। इतिहास की दृष्टि से यह प्रश्न महत्त्व का है कि अफगानस्थान की पार्सीवान जनता कब से पार्सीवान बनी है? या बाहर से आई है? यदि वह पुरानी हो तो यह सोचा जा सकेगा कि संस्कृत वाङ्मय का पारसीक शब्द शायद उसके लिए हो। किन्तु मेरा विचार है कि वह इतनी पुरानी नहीं है।

---

दोनों के नामों से प्रकट है। जहाँ हम एक का नाम लें वहाँ दूसरी को स्वतः साथ ही समझ लेना चाहिए।

१. नमूने के लिए मुदारास्त १, २० में। रघुवंश ४, ६० के पारसियों से फ़िलहाल हम सासानी राजा समझते हैं, क्योंकि सासानियों से पहले अर्थात् २२५ ई० तक फ़ारिस पार्थव कहलाता था, उसका नाम पारस प्रचलित ही न था। इस प्रकार कालिदास का समय सासानी बंश से पहले नहीं हो सकता। किन्तु यदि बड़ी पारसीक का अर्थ पार्सीवान हो तो यह युक्ति न दी जा सकेगी, यद्यपि उस विशेष प्रकरण में मेरे विचार में पार्सीवान अर्थ किसी तरह नहीं किया जा सकता, क्योंकि वे पारसीक 'पार्थाव' थे, उत्तरार्थ के नहीं।

यह स्पष्ट है कि भारतवर्ष के ही सब प्रान्तों और पड़ोसी देशों के स्थानों व्यक्तियों आदि के नाम नागरी में ठीक ठीक लिखने के लिए कुछ नये चिह्नों की भी आवश्यक होगी। इस सम्बन्ध में परिशिष्ट २ (२) में भी कहा जा चुका है। मैंने यैमे कुछ चिह्न आरक्षी तौर पर बना ली लिये हैं, किन्तु टारप में वे भी प्रकट न हो सके। ग और घ के भेद के विषय में दे० ऊपर पृ० ३० टिप्पणी। मेलगु, मिहली और निम्बती के कई राष्ट्रों का इन्वण्टार और आंकार टारप के अभाव में प्रकट नहीं हो सका, जैसे (सि०) महाबलिगग, मिनिहोई, (ते०) पेदवगू, (ति०) शोर्जेकिष्ट, और शायद बनकाई, दिहोछ आदि आसाम-मीमान्त के नामों में भी। वैदिक मन्त्रों में मूर्धन्य ल के लिए अक्षर यिन्द् है जो मराठी आदि में भी चलता है। दुर्भाग्य से हिन्दी छापेस्थानों में यह भी नहीं रहता। आकाशना और वला (राजस्थानी), पन्हाला निमंज, वेदल, पवनमाल, मानमाल और माल (मराठी), बल्लारी बंगलूर, कोन्नेगाल और गगावली (बनाहो), पदरनी (तामिल), विदुरननागल, गल और समनजकन्द (मिहली) आदि नाम और लब्ध त्रिन प्रान्तों के हैं, उनके लोग जब इनमें दन्त्य ल पोंगे (कोन्नेगाल में पदल और विदुरननागल में दूमरे स्थान में), अर्थात् वैदिक मन्त्रों के पठित जब "पेला" वा "व्येला" (पृ० २९०) में दन्त्य ल द्मगे, तो उन्हें यह स्पष्ट होगा। अपनी साक्षात् के लिए मैं इनमें समा आता हूँ।

इसके अनिश्चित दूसरी बड़ी उल्लेख है एक भारतीय मूर्धन्य-कोष की, जिसे दम-बाह्य व्यक्तियों के सहयोग से कोई अन्धी संस्था ने कर बना सचनी है। ऐसे कोष के बिना सावधान संभव ही व्यवहार में बन नहीं सचने—'भौतीक्षिष्ट आधार' के पारसे संस्कृत में मैंने भी कई लक्षण नामों का प्रयोग किया था और जब भी किसी किसी नाम के विषय में मेरे मन में सन्देह बना हुआ है।









का ही अर्थ था। किन्तु जब तक संस्कृत, पहाड़ी और हिन्दी भाषाओं के परिचित इस विवाद का फैसला न कर दें, मैं श्रुंक्षता शब्द बर्ताना ही ठीक समझा।

आवरणरुता होने पर संरुत परिभाषायें गढ़ने का मैं विरोधी नहीं हूँ। इस प्रकार "कैचमेट एरिया" के लिए शब्द कोई बोलचाल का शब्द हो, पर मुझे अभी तक वह नहीं मिला, इसलिये 'प्रवण-चेत्र' शब्द मैंने गढ़ लिया है। उसी प्रकार 'सिन्धुजल' के लिए 'अन्तः प्रवण'।

---

## प्राचीन भारत का स्थल-विभाग



जब हम साधारण रूप से 'प्राचीन भूगोल' की कोई परिभाषा बर्तते हैं, तब यह याद रखना चाहिए कि प्राचीन काल कुछ थोड़े से दिनों या दरसों का न था, और उस समूचे काल में भारतवर्ष के भौगोलिक विभाग और प्रदेशों के नाम एक से न रहे थे। जातिकृत और राजनैतिक परिवर्तनों के अनुसार भौगोलिक संज्ञायें और परिभाषायें भी बदलती रहीं हैं। तो भी बहुत सी संज्ञायें और परिभाषायें अनेक युगों तक चलती रही हैं, और यद्यपि उनके लक्षण भी भिन्न भिन्न युगों में थोड़े-बहुत बदलते रहे हैं तो भी उन विभिन्न लक्षणों की भी मानों एक औसत निकाली जा सकती है। हमने साधारणतया प्राचीन भूगोल की जो परिभाषायें बर्ती हैं, वे वही हैं जो प्राचीन काल के अनेक युगों में थोड़ी-बहुत रद्दोबदल के साथ लगातार चलती ही रही हैं, और उन परिभाषाओं का प्रयोग भी हमने उनके "औसत" अर्थ में ही किया है।

यहाँ मुझे विशेष कर प्राचीन भारत के स्थल-विभाग के विषय में कुछ कहना है। प्राचीन भारत के 'नव भेदाः' करने की भी एक शैली थी। बराहमिहिर ने बृहत्संहिता अ० १४ में मध्यदेश के चौगिर्द आठों दिशाओं में एक एक विभाग रख कर कुल नौ विभाग किये हैं। किन्तु उम वर्णन में बहुत गोलमाल है, नमूने के लिए विदर्भ (घराड) को आग्नेय कोण में (श्लोक ८) और क्षीर (कांगड़ा), कश्मीर, अभिसार दरद को ईशान





## संशोधन और परिवर्धन

—११:०:६६—

- १० ५ पं० २३ तथा ३३—२४, २५; जड़ या जोड़ प्रबुद्ध  
भी होता है और वहाँ वह छोकर कहलाता है। इस  
लिए शमी को दिव्यी में छोकर ही कहना चाहिए।
- ३४—१, १०; बंगला 'बाल' का ठीक समानार्थक अत्रभाग  
का स्वर शब्द है। माने माता।
- ४२—११, १३७—१८; मासकन्द शायद वर्गानदी, मांस है  
२८—२४, स्वामी न कि स्वमिया।
- ८४—२३, १४७—७, २७ उदुर न कि उहर।
- ८९—२; गुणि न कि गूठी।
- ९०—४; शोरवराय वा सर्वराय न कि शिवराय।
- ९०—१४, पश्चिम न कि पूरव।
- ११४—१०, दायें दायें न छि बायें बायें।
- १३७—१४; पूरवी न छि बनगी।
- १४०—१४, पूरव न छि पश्चिम।
- १६१—१, सहस्रत्रिया ( बंदूयें ) न छि गोमेद।
- १३—३४; गाग पदार्थियों को बंगला भाषा में चंदर शिब  
है, इसलिये उन्हें बंगाल में गिनना होता न छि  
असाम में।
- ३०१—१८; सहस्रत्रिया ( बंदूयें ) न छि पला।

# अनुक्रमणिका

( श्रीमती सरस्वतीदेवी काव्यतीर्थ साहित्याचार्य तथा  
श्रीमती सुमित्रादेवी शास्त्री द्वारा संकलित ।



## अ. ग्रन्थनिर्देशविषयक

[ केवल उन्हीं ग्रन्थों के नाम मुख्य अक्षरादिक्रम में दिये गये हैं जिनके कर्त्ताओं के नाम साथ नहीं हैं । फुटकर लेखों के शीर्षक नहीं दिये गये । बिना निर्देश की संख्यायें पृष्ठों की हैं । ]

— 5 —

अथर्व वेद, २६०-१ ।	इन्द्राङ्गिणीहिदा प्रियातिका, १३
अभिधर्मशास्त्र, १०१ ।	मं०, जि० २०, १०४ ।
अथर्ववेद—महाब्राह्मण-पुं-हिन्द, २१२ ।	अथर्ववेद, २०, ३८, ४०, १४२,
अथर्वशास्त्र, १२० ।	१८८, २१८, २२७ ।
अथर्वशास्त्र, पुनःकृष्णशास्त्री, १०३ ।	एतिसाहिदा इतिहास जि० १, १३४;
अथर्वशास्त्र अथर्वशास्त्र ११ ।	जि० ३, २१६; जि० ५,
इतिहास—इन्द्राङ्गिणीहिन्द पुं-	१०८ ।
सप्त अथर्व इतिहास १०६ ।	एतिसाहिन्द, अथर्वशास्त्र ८ ।
इतिहास अथर्वशास्त्री जि० १२, ११३	एतिसा अथर्वशास्त्री जि० १, २०६-७ ।
जि० ४८ १०९, ११०	एतिसा अथर्वशास्त्र १२०
इतिहास अथर्वशास्त्री अथर्वशास्त्र ११३	एतिसा अथर्वशास्त्री अथर्वशास्त्र ११३
११४	११४

भोगा, श्रीगणेश्वर ईश्वरानन्द, २१  
१०८ ।

श्रीमद्भक्त सत्तु श्रीमद्भक्ति विविदिता  
प्रकाश, १४५ ।

कविगणेश — श्रीमद्भक्त सत्तु श्रीमद्भक्ति  
श्रीमद्भक्ति विविदिता श्रीमद्भक्ति  
८, १०८, श्रीमद्भक्ति ६, २०५,  
श्रीमद्भक्ति १४ १३० श्रीमद्भक्ति २३,  
११८ ।

कविगणेश — श्रीमद्भक्ति विविदिता, २३, ११४,  
१०१ २०५ १४, २२५,  
११४ ।

कविगणेश, श्रीगणेश, १८८ ।

कविगणेश — श्रीगणेश, १८, ११८-९,  
— श्रीगणेश, १० ११५, ११५,  
११५ ११५ ११५ २०५,  
१०५ १०५ १०५, १०५-९  
११५ ।

कविगणेश, ११५ ।

कविगणेश श्रीगणेश श्रीगणेश श्रीगणेश  
१, ११५ ।

कविगणेश श्रीगणेश, १०५-९, १०५,  
११५ ।

कविगणेश — श्रीगणेश, १०५ ।

कविगणेश श्रीगणेश श्रीगणेश श्रीगणेश  
११५ श्रीगणेश श्रीगणेश श्रीगणेश

१४५; — श्रीगणेश श्रीगणेश श्रीगणेश  
श्रीगणेश श्रीगणेश १८५, २०५,  
२१५ ४. २१५ २०, २१५,  
२१५, २२५, २३५. १०५-  
१ १०५, ११५, ११५-९,  
१३५ ।

कविगणेश, श्रीगणेश, १०५ ।  
श्रीगणेश श्रीगणेश श्रीगणेश,  
श्रीगणेश श्रीगणेश श्रीगणेश श्रीगणेश  
श्रीगणेश, ५ ।

कविगणेश श्रीगणेश, ११५ ।

श्रीगणेश श्रीगणेश श्रीगणेश श्रीगणेश  
श्रीगणेश श्रीगणेश, १०५ १०५, १०५, ११५;  
१०५ श्रीगणेश श्रीगणेश श्रीगणेश श्रीगणेश  
श्रीगणेश ११५, ११५ ।

श्रीगणेश श्रीगणेश श्रीगणेश श्रीगणेश  
श्रीगणेश श्रीगणेश श्रीगणेश श्रीगणेश  
श्रीगणेश श्रीगणेश श्रीगणेश श्रीगणेश

श्रीगणेश श्रीगणेश श्रीगणेश श्रीगणेश  
श्रीगणेश श्रीगणेश श्रीगणेश श्रीगणेश  
श्रीगणेश श्रीगणेश श्रीगणेश श्रीगणेश  
श्रीगणेश श्रीगणेश श्रीगणेश श्रीगणेश  
श्रीगणेश श्रीगणेश श्रीगणेश श्रीगणेश  
श्रीगणेश श्रीगणेश श्रीगणेश श्रीगणेश  
श्रीगणेश श्रीगणेश श्रीगणेश श्रीगणेश  
श्रीगणेश श्रीगणेश श्रीगणेश श्रीगणेश

श्रीगणेश श्रीगणेश श्रीगणेश श्रीगणेश  
श्रीगणेश श्रीगणेश श्रीगणेश श्रीगणेश  
श्रीगणेश श्रीगणेश श्रीगणेश श्रीगणेश  
श्रीगणेश श्रीगणेश श्रीगणेश श्रीगणेश  
श्रीगणेश श्रीगणेश श्रीगणेश श्रीगणेश

गृह्यसूत्र टर दनुमन मौर्गनलो-  
 टिनन मेरसलनाष्ट जि०  
 ६४, २४६ ।  
 निक, २४-४, ३९, १६०, १८९;  
 कुण्डककुण्डलसिन्धव, ३०;  
 कुण्डम, २११; कुल्लकलिंग,  
 १०२, २११; भद्रमाल ३६;  
 महाजनक, १८९; वलाहम्म,  
 १८९, ३०६; समुद्रवाजिज,  
 ३०६; सुधारक, १८९; मुम्मा-  
 किन्द, ८९१ ।  
 जायसवाण, १७६, १८९ ।  
 टामस, टा०, १८३ ।  
 टाल्मी, १६४ ३०७, ३१० ३४८ ।  
 टेलर, मर भाइरुह—दि आल्का-  
 बेट, ३३० ।  
 टैविड्म, टा० राइज, १९९ ।  
 तारीख-ए-सोरट, २०४ ।  
 तोगस लीगिदम, ११४ ।  
 थेरी अरदाज, १९१, ३०७ ।  
 थेरीगाथा ३०७ ।  
 हीन्दिकाय अहबया ३१ ।  
 हीन्दिस १६६ ।  
 हीनाकाय ३३-३ ।  
 हेर अरदाज पराण १३६

धम्मपाल परमार्थदीपनी ३०७ ।  
 नलोपाख्यान, देगिये महाभारत ।  
 नागरी प्रचारिणी पत्रिका  
 जि० १, ७१; जि० ३, ७०,  
 २३० ।  
 नेस्फॉल्ड २७५ ।  
 पतंजलि—महाभाष्य, ३५०-१ ।  
 पाणिनि—अष्टाध्यायी, १६०,  
 २२६, २३१, २७६ ।  
 पार्सेटर ५२-३, २०६;—एग्जप्ट  
 इंडियन हिस्टोरिकल ट्री टोगन,  
 २१, २१, ९३, १६९,  
 १८४ ३०५, २११, २३४,  
 २४१ ३०६;—मार्चण्टेय  
 पुराण २२८, ३०८,  
 ३१८ ९ ।  
 पिनास—ग्रामटिह टर प्राकृत  
 समाज, २४६ ।  
 पुराण ३०६-७, ३१८, ३५० ।  
 पेरिडम औप दि इरिपियन  
 मी—७५, ३८६ ।  
 पेरि मर अरिबज, ३२८, ३३०,  
 ३३१ ।  
 पेरिडिक्क साहम्म बार्टनी जि०  
 ३४, ९ १९४ ।  
 प्रामांदिम एंड टर्जिक्काम मी०



मूलनिधान, २४-५, १०१ ।

९, २९७ ।

मेलिथीन-इचनीमिड इन्स्टिट्यूशन

हरपंचरित, १९ ।

भोक् हिस्ट्री, १२ ।

दिग्धीनाकरमाणर, ३४४ ।

म्याडन, सर भीरिल, ३४५ ।

हुक्का, डा०, बीरम इन्डियन

मन्त्रालय, ३१४ ।

नम् इन्डिकोरम्, ति०

मिथ, डा० विम्लेज, -भीरमकर

१, ३१० ।

हिस्ट्री भोक् इन्डिया

हार्नेली, डा० क्लॉक, -कमोडि

० ८, ५६ ६०

सामर भोक् दि मीरियर

१०० १६०-४, -भली

मिन्वेजेर, ५४९ ।

हिस्ट्री भोक् इन्डिया

हीम्पन १०९ ।

### डॉ. माध्वराय

[ मन्त्रेण—आ = आचार्य विद्वान्, इ = इतर, इलरी, ज्ञा = ज्ञानि, वंश, ज्ञान, जन आदि, चि = चिन्ता, प्रदेश; जो = जोन या जरा, ती = तीर्थ, इ = इच्छित्तन इच्छित्तनी, दे = देश, प्रान्त, जनपद डी = डीप, न = नदी, इमर्ली घाटी या कर्डा, प = पर्यत पर्यतगुंम्यवा, पू = पूरव, पूरवी, प्र = प्रतीक्य, परिदुम, व = वस्ती गाँव, इहर हिला, बन्दरगाह वां = वांशी, भाषा (सावि, वाहमय बर्णमान्वा, ग = राजा, म = मराठर, इद, मे = मेनापति । ]

अद्वय ग ५२ १०, ४०, ६०, १०, ०२, ०६ ०६, ८२,

अद्वय ग ११ ३५ १०२, १११, १०४ १८१, २०० ।

१०३, माध्वराय ०३ ।

अद्वयी को १६ ८५ ३८, १००,

अद्वय ग १६८ ।

११० २४३, ३४५, २४६,

अद्वय वा अद्वयवा ११२ १०० ।

०१०, ३१५, ३२८ ३३०,

अद्वयवा १६० ।

३४० १ ३४३ ४ ।

अद्वय = अद्वय ।

अद्वय वा ०१३ ०६, ०८,

अद्वय १६० ०००

० ११०, १११ ।

अद्वयवा १६० ० १११

अद्वय ग १११ ।

















कक्षपाली व ८६, १०४ ।

कवि बो २७०-१ ।

कामी दे १०, २०, २३, ३२, ४६,

५०, १११-२, १२२,

१३६-४५ १४८, १५३, १५६-

६२ १७२-३, १७५, १७७,

१८० २१६ २३१-५, २४६,

२७५, २६८-३००, ३०३,

३११-२, ३३२, ३४५, ३४७ ।

कामीरी जा बो ३०, ८५, ११०, १०५

१३६, १४१, १४३ १६२, २३१,

२४५ २५६, २६६ ३०२-३, ३३८ ।

कश्यप मानस आ २२८ ।

कष्टार जि १३८, १४५, २३१-२ ।

कसई = कविता ।

कसू व ६१ ।

कमेह दे ३४८ ।

कसौली व १५० ।

कहलगाँव व १७२ ।

कहलूर जि १४७, १७५, २३३ ।

काभोक = काबुल ।

काभोगी बो १३२ ३१३ ।

काकड़ व १२६, १३५ ३२० ।

कागने बो २६३ ।

कागना न ३२१-२ ।

कागवेनी व १५४ ।

कागान व १७७ ।

काकरोल = ककरुव ।

काकेर व व ६४ ।

कांगड़ा व जि १११-३ १४६-

१५०, १५९, १७३, २३२-३,

३२२, ३३७, ३४५, ३४७ ।

काजनाग व १४१-४ ।

कावनजगा व १०६, ११२-३,

११५, १५५, १५७ ।

काँची या काँचीवरम व १००,

१०३-४ ।

काठगोदाम व ४२ ।

काठमाण्डू व ११६, १५५-६, २००।

काठियावाड़ दे ६६, ६६, ७०, ८६

१८४, ३४० ।

काँची व ३५० ।

कादम्ब आ २१५ ।

कानपुर व ५५, ७६-७, ३४४ ।

कानसू दे १२७, १७७, १७६-८०,

३०२ ३१४ ।

काश्री = कुई ।

कापिनी व १६० ।

काकित जा बो २३०-१,

२४५-६ २६८ ।

काकितिनान = कविता ।

काबुल व ४०, ४४ ४७, ४६, ५०,

१०७ १३३ १३७ = १५६-

६० १६२ १६४ १६६,

१६८. १७७ १८०, १८२-३. कार्तीकट व १८, १०० ।  
 १८५. २००. ३२० ३४६; न कार्तीकुमाङ्गि जि १७२ ।  
 ३८, ४३. ५४. १२७-६. कावेरी न ८७. ८६, ६० १०३  
 १३१-२. १३६-७; २२५ २२६ २६० ।  
 २४५, २६७. ३१६-२० । काशगर प = कन्द; न १२४.  
 कामदेश कापिर जा १३७ । १७५; व १२७ ।  
 कामरूप दे २००, २६५ । "काशिका" न ३१६ ।  
 कामेत प ११५ १५१ । काशी व ३१, ३७, ४०-१, ४६, ५४.  
 कामोज = कर्मयोज । ८२ १८६, १६६. २०७-८.  
 कारकुल पार्मार १२५ । ३५०; जि २०८ ।  
 कारकोम प ११६-८ १२४ ३०४ काकार = चित्तराल ।  
 ३४१; जो १७५ ३०४-५ । कासरानां बलोच जा २२४ ।  
 कारलुकर न १२४ । काशियन सागर १०, १७६.  
 कारहर न जि व २३१, ३१६ । काहा न ३२० ।  
 कारूप दे जा ७६-८१. २०५ किगरी बिगरी जो १५३ ।  
 २०७-८ । किरर जा दे १४८, २३४, २६६.  
 कालक वन ३५० । ३०४-८. ३१५ ।  
 कालहा व १५०. २३३ । किम्पुल्य-किरर ।  
 कालहोप २५५ । किरर जोह व १५५ ।  
 कालर्षा व ५५, ७४. ७७ । किराँत जि वो २६३-४, २६७ ।  
 कालरापन प ६० । किराड जा २२१ ।  
 कालाबाग व ४८ । किरात जा वो दे १७१, २६०-१.  
 कालिजर व ७६. ८४ २०६ । २६४, २७१-२. २७६-८२.  
 कालिदास भा २६१ ३०५ ३२६ । ३०५-६. ३०८, ३२६ ।  
 कालिग्राह व १५७ किना सैफुल्ला व १८२ ।  
 काला न (कुमाउर का) १११ ११२ किलिक जो १२५ ।  
 - ३५ । जो-व का ३३३ । "कानन गता = कृष्णगता ।

कीर के २३४, ३४५ ।  
 कीरमाम २३४ ।  
 कुभाय न १२८, ३१६-२० ।  
 कुई जा को २३९, २४१-२ ।  
 कुइरहार व १६१ ।  
 कुनी व १५५ ।  
 कुनाय न १२८ १३७ ८, ३१६-२० ।  
 कुनिन्द जा के ३१०-११ ।  
 कुन्मल दे २१५ ।  
 कुन्दार न १२९ ।  
 कुन्दिर्पो व ४० ।  
 कुन्दूज न १३१-३ व १३२ ।  
 कुन्हाय न १३६ १४१, १४३ १७७ ।  
 कुविषयर्षि व १४०-३ ।  
 कुमा = काकुल न ।  
 कुमाउनी को ११७, २४६ ।  
 कुमाई जि ११४, १५० १५२-  
 ३ १५२-६० १६६, १७१  
 २०१, २३२ २३४-२  
 २३८ २५१, २५६, २६३-४ ।  
 कुमारा न ३१६-२० ।  
 कुम्ब वा ७३ ।  
 कुम्बजमोर व ७३ ।  
 कुम्ब न १२३ ।  
 कुम्बेज व जि १० २८, ३१ ३८,  
 ४६, ५१-४ ७६, १०५

२०२, २०४ २०७ ।  
 कुम्ब = भोगि व ।  
 कुम्बजमंग न ६१ ।  
 कुर्दिस्लान दे १३४, २४७ ।  
 कुन्ल जि २१४ ।  
 कुर्म न १२८-६, १८२, २२४ ।  
 कुलावी व २२४ ।  
 "कुलिङ्ग न जा दे ३१० ।  
 कुन्दि या कुलिङ्गीन व कुन्दि ।  
 कुन्दन या कुम्ब जि ४२, १११,  
 ११३, १४८, १५३, १५६-  
 ६० १६३ १७१, २३२,  
 २३४ २३६, २६४, ३१२,  
 ३४५ ।  
 कुम्ब व १८२ ।  
 कुम्ब जा १६२ ।  
 कुम्ब कुम्ब कुम्ब वा १७६  
 २२८ ।  
 कुम्बी चिम को जा २६५-६ ।  
 कुम्बिहा व ५८, १७४, २१५-७ ।  
 कुम्बा व १२७, जि १७०, १७६ ।  
 कुम्बा' वा 'कुम्बा' न ३१६, ३२० ।  
 कुम्ब को २५६ ।  
 कुम्बावन् = कुम्बाई ।  
 कुम्बगंगा न ११३, १२२,  
 १३८-४३, २३३, ३०३ ।





गुणवत् ५० ।	२०५, २०८ २१६, २३४-५,
गुणवत्ता ५० ।	२४१, ३०३-१ ३५४
गोपाल ५० २२३ ।	३४८ ।
गोपाली ५० २०० ।	गंगा पाठ का द्वितीय ३ १६५-५
गोपाली का २५६-७ ३५२ ।	१६९ ३५८ ।
गोपाली जो ५०-१, ५५, ५८ १०६	गोपाली व ३५८ ।
१०६-२ ।	गणेश व ३५७ ।
गो ५१ ३३८ ३०० ।	गणेश व द्वि ५० ५८, ५८
गो ५१ जो ३३८, ३८२ ।	५०, १३८ १३२ २१५
गो ५१ व द्वि ३३८-७, ३७८-६	३२० ।
३०६-१० ।	गणेशी पुर्ण का १३३ ।
गो ५१ = बाणी ।	गणेशी मास १३६, ५२, ५५,
गो ५१ जो ३३५ ।	५८ १५८, १७३, २१५ ।
गो ५१ जो ३३६ २५५-७, ३०० ।	गणेश द्वि ५८, २११ ।
गो ५१ जो २५६ २६१ २७६,	गणेश व ५६ ।
जो २५५ ३०७ ।	गणेश व ७३ ।
गो ५१ = विष्णु ।	गणेश व द्वि १३१-२ १३८, १५१
गो ५१ का ३३८ व ३३८ १३४	१३६, १६६, १७२-५
गो ५१ का ३३८ व ३३१ ।	२३०, २३८, २३८ २३१
गो ५१ का ५६ ।	२५६, २६३ ३४६ ।
गो ५१ व ३०, ३० ३४-६, ३८	गणेशी जो ३५१ ।
३१-७ ३८-७१	गो ५१ द्वि ३५३ ।
३३ ३१-७ ५४-८ ३६	गणेश व ३५७-४ १३६ १४८ १५१,
३९ ३८ ४० १ ५४ १०६	गणेश व ३७
५० ५० ५० ५० ५०	गणेश व ५३
५१ ५१ ५१ ५१ ५१	गणेश व ५३
५२ ५२ ५२ ५२ ५२	गणेश व ५३

- गंधर्व जा २३४, ३०६, ३४८ ।  
 ग [गा] न्धार दे (उग्र) ३७-९, ७५, १३८, १४३, १६७, १७७, १८३, २२१, २२५, २२८, २३२, २५०, २६७-८, (धीन में) ३९० ।  
 गभस्तिमान् प ३४८ ।  
 गल्चा जा बो २२५, २४७, २६८ ३००-२, ३१३ ।  
 गभीनगद् प ब २६ ६३ ।  
 गात्रीघाट ब ४८ ।  
 गारलक म ११५-६, १५० ।  
 गारलोक ब १५०, १५३, १७४, २५६ ।  
 गारी प ४१ ५८, १२१, २१२, २६५, ३१८, ३५२ ।  
 गारि म १५२ ।  
 गिल्लज्जू जा १२८ ।  
 गिल्लिगल म ब ४६, ११४, १२६, १२२, २२५, २३०, २३८-६, १७५, १७७, १८१, २२५ ।  
 गिल्लिगल हानपीट रोड १७९ ।  
 गीनबद्ध ब ४१-२ ।  
 गुजरात दे ११, २२, २६, ५३, ६५-७, ६९-७२, ९८, १०७-८, १६३, २००-१, २१०, २१७, २२०, २३०-८, २४८, २५०, २७४, २८१, ३२४, ३३३; जि ४७, ३३५ ।  
 गुजराती बो ६९, ७११, ७१२, २३८, २४८, २६९-७१, ३२७, ३२६, ३३१, ३३३-५, ३४४; आ ३४१ ।  
 गुनभावाला जि ३३५ ।  
 गुडगॉन जि २०२ ।  
 गुणाग्र चा २४६ ।  
 गुली म ८६, ३५१ ।  
 गुद न १२० ।  
 गुनकल ब १०५ ।  
 गुप्त जा ६७, ६६, ७१, ७८, ८१ २०५, २२८, ३०९ ।  
 गुरदासपुर जि ४७ ।  
 गुरमुखी बो २६६-७०, ३३२, ३३६-७ ।  
 गुरका माध्याना प ११५ ।  
 गुहंग जा २६४ ।  
 गुरेज ब १४१ ।  
 गुर्जर जा ७१ ।  
 गुलवर्ग ब १४३ ।  
 गुलवर्गा ब ८६, २१४ ।  
 गुण्ड जा ३०५ ।  
 गुणे जि १४६-५० ।  
 गूटी" = गुली ।  
 गुजर जा २४२; गुजरी बो २१०, २४६ ।

मैलिक बी २४२ ।

गोका ब ८४, २३३ ।

गोकाक ब २७ ।

गोतरा ब ४० ।

गौड जा ७६, २३६-४१ ।

गौडवाना दे २१३ ।

गौडो बी २४०-१ ।

गोदावरीन ७४-७, ८४-८,

९०, ६६, १०१ २. २०१  
२६० ।

गोनदे ब ७४, १०० ।

गोनती न ९४, १०६ १२६ ।

गावत्र जो २८, ४० ४४ ४८

४०: न १२६: १८२, ३२० ।

गौर न १३४ ।

गोरखपुर जि ब ३२, १४४ २०८  
३२३ ।

गोरखा ब १४४; जा २३४-६,  
२६४, २७३-४ ।

गारखाली = लसकुरा

गौरी मुहम्मद या शहाबुलान

४३, ७० २७४ ।

गौरीकुण्ड ब जि २४

९१-२ २७ ३०

गौरीन्दामिह लफ १७४

गौरीधामप ११-३ १४४-४

३ ब ४८

गौडविन श्रीमिन् प = चगेरी

गौरी = पंजकोरा ।

गौरीगंगा न. ११४, १४२-३

गौरीशंकर प १०९, ११२

१५४-६ ।

"गुगर" दे ११८ ।

गुणध्वे ब १५७, १७४ ।

गुण्य साहेब ३३०, ३३७ ।

घाड टंक रोड = सड़के आज़ान

पामनारीविषय जि ३१८ ।

गालन्द. ब ४११

गालपाड़ा जि २१२, २६४ ।

गालियर ब ४४ ६० ।

घरवत न १४० १९९, २०२-३,

२२१, २३३ ।

घटप्रभा न २७, १०४ ।

घाघरा न ४३, ११२, ११४-४,

११६ १४२-३, ३४० ।

घाटमाथा जि ६३, २१३ ।

घुन्द पामोर १२४ ।

घोरबन्द न १३१-२, १३७ १८१ ।

घोरा या हरी खांसांम दे १४६-५०,

१५० १५७ २५६ ३१=

३७३

वहमहमिन म ३०५ ।

वहम न ३००

वहम २५ ३२७



छोटा विडम्बन = बोधौर ।  
छोटा नागपुर = झाड़खण्ड ।  
जगाधरी = ४६ ।  
जह्मखर = ११३ ११५-६  
११६ १४८-६ १५१-३,  
= १५८-६, त्रि १३६,  
१४६ ।  
जसौरी = ७६ ।  
जद वा जह = जाद ।  
जमनाली ग्राम = ३३७ ।  
जगती ग्राम = ३३७ ।  
जबलपुर = ७७८, ६६, ८०३ ।  
जमना = ८५-६, २८-६ ३६,  
४०, ४२, ५१-८ ५५-३,  
६३, ७३, ११८, ११६  
१५०-८ २०२-३, २०५-६  
२३३-५ २५६ २६० ३४४ ।  
जमशेरी = ११३, १५० ।  
जमशेरीपुर = ६२ ।  
जमालपुर = ५८ ।  
जम्शुर्दानपुर = २७७ ।  
जम्शु = ४८ १४६ ।  
जमशेरीवा = १३१ १३३ २१८  
२१९ २२१ २२३ ३१८ ।  
जमना = ४८  
जम्शु = ३८ १११  
जम्शुवा = जम्शुदानपुर ११ १११

जम्शुर्दान = ( पार्सेट के ५ ) =  
मीरा, ( पार्सीर के ३ )  
२२६, ३१३ ।  
जमन जा, जमनी = १०, ६१-२,  
१५६, १६०, २५२५  
२५६ ।  
जम्शुवा = ३६, ५१; त्रि १४६,  
२३३ ।  
जमालपुर जहाँ = ३५० ।  
जमालाबाद = १२८ ।  
जम्शुवा मिह से ५५, ७६ ।  
जहाँगीर हा ७१, १४३ ।  
जाद जा १० ४३-४, ५४ २२२  
२३६-८० ।  
जम्शुरी = ११५, १५१, १२३ ।  
जामना =, जामनी जा ३, ४१,  
१२३ ।  
जाम हा ७० ।  
जामना = ८७, १०१ ।  
जामहाँ = १० ।  
जामा = ६२, ८५४ ५ ।  
जाद = २०८ ।  
जम्शुवा वा जा २७७ ।  
जम्शुवा मिह हा ३६  
जम्शुवा हा ११० २३४ ।  
जम्शु हा ११३  
जम्शुवा = जम्शुदानपुर जम्शु

जेवक व १३१, १७५ । जेवकी  
 = इदवागिमी ।  
 जेठलम न जि व ४३ ४६-७,  
 ४६, ५०, ११३, १२२,  
 १३८-६ २६=६ ।  
 जैन धर्म २५० ।  
 जैसलमेर जि २१० ।  
 जोगबानी व ४२ ।  
 जोजीला जे ११३, १२१-३, १३०,  
 १४०, १४२ १४५, १७३ ।  
 जोरकुल स १२५ ३०४ ।  
 जोर्नामठ ती ११६, १५१ ।  
 जोनसार या जोनसार-बाघर जि  
 १११, १५१, २३२, २३४  
 २३८ २४६, २५१ ।  
 ज्वालामुखी ती १४६ ।  
 झंग व ४०, ४४; जि ३३५ ।  
 झमिया व जि २११ ।  
 झलवान जि २२२ ।  
 झाड़खंड दे २६, ५८ ६५-६  
 ६८, ८०-२, १६४, २०१,  
 २०८-६ २११, २४१  
 २५३ २७६ ।  
 झोसा व ७५ ७७ जि ३०५ ।  
 झाप न जि ७१ १०६ १३५  
 १८० २०० २०५ २२६  
 -७ ।

जेनछिनधदला व ११६ ।  
 टकर दे ३३७ । टकरा वी २२०,  
 ३३७ ।  
 टांक व १८२ ।  
 टेम न १६२ ।  
 टोचा न १८२ ।  
 टोबा व १२६, १३५, ३२० ।  
 टोम न (विन्ध्य की) ६३-५ ७७;  
 (हिमालय की) १४६, १५२ ।  
 ठाना जि ७५ ।  
 ठगसई व १५० ।  
 ठव=भोलदेज ।  
 ठफरिन, लाटं, ६० ।  
 ठोंग जि ८३ ।  
 ठालनवाला व ( देहरादून का  
 मुहल्ला ) १११ ।  
 डिमूगड़ = दिमूगड़ ।  
 डिलाही वी २१६ २२१ ।  
 दुगयुल = भूयान ।  
 दुगर जि १३८, १४५-६, २३३,  
 ३१२ ।  
 डेन वी २४३ ।  
 डोग इम्माइलवां व जि ३४, ४०,  
 ४४ ४८, १८२ २२०-१  
 २२३-४ २८२ ।  
 डा गार्जीवां व जि ३४ ८०  
 २२३





मंत्रियादनी व ५७ ।  
 मेनुगु बो ना २१५, २२० २३२-  
 ५०, २४२, २५० २१६-७१,  
 ३३०-१, ३५०, ३५० ।  
 मो।ना = समीप ।  
 मोराक व त्रि १५० । मोराकच व  
 १५० ।  
 मासमेवाल मो १५३ ।  
 मापी वा माही = मापी ।  
 मयनीव वा २५०-३ ३५५ ।  
 मियल व १५३ २३३, ३१० ।  
 मिया व व ३३ ३३ २०३ ।  
 मियल व व ।  
 मियादनाय व १५३ ।  
 मियलीपाद व १५३  
 मियल व ११३, १५० ।  
 मियलीपाद व १५३-४ १०० ।  
 मय क मय ।  
 मयल व २५३ ।  
 मय व २१ ५० ३३ ३३-३  
 ३१ ३३ ३० १५३ २१०-  
 १ ३३३ ।  
 मय व ३० ३३ ३३ ३३ वा  
 ५५०  
 मय व ३० ३०  
 मय व १५३  
 मियल व व १५३ व व १

१२७, ३१०, ३१५ ।  
 मोर मागु व १५० ।  
 मोर मो सम्भोग वा १३० ।  
 मोरना मो १५५ ।  
 मोर दे २५३ । मोग मोगी ना मो  
 २५३ ।  
 मयिन, दयिन, मयल दयिन-  
 मयल वा दयिनाय दे १६  
 २५-१, २७, ३२, ५२, ५४  
 ५ ५१ ६०, ६२, ७०-१,  
 ७३, ७५-८० ८०-१०१,  
 ११०, १२५, १२६  
 १३८, २०१, २१३-१३,  
 २२२ २३३ २५०, ३५३ ५०  
 दयिन व मयल व १५५ ।  
 दयिन व व मयल १० ।  
 दयिन व मयल = मयली व मयली  
 व व १० ।  
 दयल व व ३० ।  
 दयल व १११ ।  
 दयल वा १५० ।  
 दयल व २५, २१३  
 दयल वा ११३ १३३ १३३  
 २३० २३१ २५३ ३५३,  
 ५५३ २३० ३०० ३१३ ।  
 दयल व मयल व ११३ १३३,  
 १३५ १३५ १३ १३३,

१६८, २३१-२, २४६, २६२, ३४७ ।

दरदपुरी = गुरेङ्ग ।

दरदवर्गीय को २४५-६

दादी या दरदलानीय को २४६ २५०-१, ३००, ३३५ ।

दगई व ४१ ।

दगियां व ४८, ६१ ।

दगभूम ज्ञ २११ ।

दगपुर व ६५, ७५, ७८ ।

दगान ज्ञ, दगाना न (भारत में) = दसान: (हिन्दुवासी में) =

सौह का बांग ।

दस्यु का ३१२-३ ।

दाक्षिणात्य का १०८ ।

दाक्षिणात्या कादम्बरवृक्षि ३५० ।

दाक्षीणा को २६३ ।

दांतुन = दन्तपुर ।

दामोदर न २६ ६६ ।

दारकोट को १२५

दारमा या दाम, व ११२ १५३

२५५ को १५३ दारमा

यात्रा ज्ञि १५३

दारमवहू का दार १५३, १८३

व १३० २०५ २१८

दारा या दारमवहू का दारमा

१२, १७८

दाक्षिणिक व १५७, ३१७, ३४२ ।

दाक्षिणा को २६३-४ ।

दाक्ष = दुगर ।

दाक्षे ज्ञि को २६५ ।

दाक्षोर = दगपुर ।

दाक्षरोग न २६५ ।

दाक्षी न ३२१ ।

दाक्षगद व ४१, १६४, २८२ ।

दाक्षी या देहली व ३२, ३६, ३६, ४०, ४२, ४४-५, ५५, ६१, ६९-७१, ७३, ६८, १७३,

२४८ ३१०, ३२६, ३४४ ।

दाक्ष या दाक्षी न १२०, १५८, १६८, २६०, ३४२ ।

दाक्षिण न ५६ ।

दाक्षायत व १९४ ।

दाक्षपुर क्षात्रिय का १७२ ।

दाक्ष ज्ञि १३७-८ ।

दाक्षपुर = ददमुट ।

दाक्षन व १८२ ।

दाक्षुट को १४१ ।

दाक्षी व ११०, १५५

दाक्षान्त में ७२ ।

दाक्षी का ७६ ।

दाक्षी न २५ ।

दाक्षीमा न १५५-६

दाक्षीय व १५१ ३ ।







नामध व ७६, ७८ ।

नामाद् जि २१० । नोमाद्दी धो  
२१० ।

नीषा न १२६, १६६-१७० ।

नीशा न ८६ ।

नील न ३० ।

नीलगिरि प ८७ ८६ ६०, २१४,  
२७६ ।

नीलम' जोह = न्येनम् जोह ।

नुमान ओ १७१ ।

नुनकुन प ११३ १४० ।

नुवरा न ११६७ ।

नेगापटम् = नामपट्टणम् ।

नेपालदे २३ ४५ ११०-२, १३०

१४६ १५२-७ १७२

१७५-१, १६३, २३२

२३५-८ २५८-६, २६३-४,

२६७, २७३, ३०६; जि

१५४५, २००, २३५-६

३०३, ३११ ।

नेपाली जा १६६, २३७, बो

२४६-५० २६७, ३०३ ।

नेरू व २१८ ।

नेरू व ६३, २१६, जि २१४ ।

नेवार जा २६४ । नेवारादिबर्गीष

धो जा २६४ । नेवारी बो

२६४, २६७ २७१ ।

नेनीताल जि ११० ।

नेपोलियन ता १६२ ।

नीगांव व ( प्र ) ७७, जि ( प )  
२६५ ।

नीशेता व ४१ ।

न्यक स ११७ ।

न्यक न १५७ ।

न्यू गिनी द्वी २५५ ।

न्येनम जोह = कुयी ।

पक्षपादे ४७, २२४-५ २२७-६ ।

पक्षली जि १३८, १४१, २३२-३ ।

पक्षान = पक्ष ।

पक्षुवाली आचारपद्धति २२५ ।

पक्षी = पक्षी ।

पक्षमान प १३८ ।

पक्षान = भरिमहनपुर ।

पक्षु जि २५६ ।

पक्षोह स ११६-७ ।

पक्षमकी प ६५, २५६ ।

पक्षमल्ल प ६० ।

पक्षिन खगड १६६ २१७-८,

२३७, ३४६ ।

पक्षिम या पक्षिनी समुद्र ५६,

६८ ७४, ८३, १६८, १८८ ।

पक्षिनी घाट प ७४, ८३-४,

८६-७, २१३, ३२१ ।

पक्ष गण जा ३११ ।

पञ्चाल के ४६. २०३-४. २०७;  
(८) २०२ २०४; (९) २०४  
२१=।

पञ्चालधारा = धीर पञ्चाल ।

पञ्चदशोत्तर १२२, १३७-८ १३४ ।

पञ्चदशोत्तर न १३१-२. १३७-८  
१८२. ३१६ ।

पञ्चान १२५ ६ ।

पञ्चाहरे १०-१. २३ २६. ३१-

२. ३४. ३७ ४०. ४२-४

४७-८, ५०-७ ६१. ६६.

७६ १३४ १४३-४. १६२-

३. १८५. २०० २०२ २१०.

२१६. २१७. २१६-२१.

२२३-५, २०८-९. २३२-३.

२३६-८ २४८. २४२. २६६

२७५. २७६-८१ २६८.

३२४. ३२७ ३३०. ३३२

३३४. ३३६-८ ३४० ।

पञ्चदशोत्तरा ४३. २२१. २०८.

२७५ ६. ३३६ ३४१; ४०

२०२ २१६-८० २२२.

२३० ३ २३८ २४५ २४८

२६६ ३०७-८ ३३० ३३५

३ ३३७-८

पञ्चाल ६ १० ४० ४५ ४

५३ ५४

पट्टिपाला जि २०२ ।

पट्टान जा ३० ४७. ५४, ७१.

७५ १३४. १८२. १८५.

२२२, २२५ २२७-३० ।

पट्टानवाट व ४२ ।

पतकोई व १६५. २६६, ३४२ ।

पतुधा = पुधाति ।

पट्टा न ४१ ।

पट्टा व जि व ६३. ७७ ।

पट्टाला व १०६ ३४२ ।

पट्टवा जा ३१ २५५ ।

पट्टवाहीनी जा ३० २५४ ।

पट्टवा वा पट्टवा न ११३ १४=।

पट्टवा जि २१३ ।

पट्टवा जा २०९ ।

पट्टवा जि ३१३ ।

पट्टवा = गवा ।

पट्टे न ११५ १४८-९ ।

पट्टवामिसम = उवामिसम ।

पट्टवा = वाम ।

पट्टवा = वृष ।

पट्टवा वा पट्टवा = पट्टवाहीनी

पट्टवावाट २२१-२३७ ३१० ।

पट्टवावाट २ २३. ३४६ ।

पट्टवावाट व ४०-१ ।

पट्टवावाट व २०५ ।

पट्टवा जि २० २०८ ।

नामन व ५६, ५८ ।

नामाह जि २१० । नामाहो वो  
२१० ।

नावा न १५६, १६६-१७० ।

नाश न २६

नाल न ३० ।

नालांगे व ८७ ८६ ६०, २१४,  
२७६ ।

नालम जं ह न्येनम् जं ह ।

नामान १७३ ।

ननकन व ११३ १५० ।

नुषरा न ११६ ७ ।

नगापठम् = नागपठणम् ।

नपाल इ-३ ४ ११०-२, १३०,

१४६ १५० ७ १७२,

१७६-४ १६७ २३२

२३५ = २५८-६ २६३-४,

२६७, २७३ ३०६, जि

१५७५ २०० २३५-६

३०३ ३११ ।

नगाग ना १६६ २३७, वा

२४६ ५० २६७, ३०३ ।

नहं २ २०८ ।

नगा १ ५३ २१६ ११ ११३

१११ वा २१६ नगाव विव ११

ग १ २१६ । नगावा वा

२६४ २१७ २७१

नाम

नामाह

नावा

नाश

नालांगे

नालम

नामान

नुषरा

नगापठम्

नपाल इ-३

नगाग

नहं

नगा १ ५३

नगावा

नागाव

नागावा

नागावा

पच्छिम मं

२३७

पच्छिम वा पच्छि

६ = ७४ ८३,

पच्छिमा घाट व ७४

८६-७ २१३ ३२१

पच्छ गण आ ३११ ।



पलाशिनी न ३१८-९, ३२२ ।  
 पलीत जा बो २५५-६ ।  
 पल्लव जा १०३-४, १०८, २७३ ।  
 पल्लनी प ६०, ३५२ ।  
 पल्लेह न ३२२ ।  
 पवनगद्द व १०६ ।  
 पञ्चाङ्गना पश्चिम ङरा = पश्चिम  
 मण्ड ।  
 पतमान = पक्ष ।  
 पत्न्याली = पत्न्याली ।  
 पत्ना बो २००, २२२-४ २२६,  
 २२८-९ २३७, २६८  
 ३३८-९ ।  
 पदार्थी बो २५३ ।  
 पदादी बो २३२-३, २३८ २३८-  
 ६ २५८-९, २६८, ३०७, ३३६  
 पद्म जा १०५ ।  
 पाञ्चाली वा पाञ्चालमध्यमा नाञ्च  
 प्रवृत्ति ३५६ ।  
 पार्श्वपुत्र = पटला ।  
 पार्श्विन भा १९० १९१ २०० ।  
 पार्श्वन जा ५१ ३ ३१५  
 पार्श्वरत्न इ १०० ।  
 पार्श्वरत्न इ १० ११ २०० ।  
 पार्श्वरत्ना न ६ ।  
 पार्श्वरत्न म १००  
 पार्श्वरत्न व ५४, ५३ ।

पार्श्व दे १९, ४९, १२२-७, ११०,  
 ११८, १७०, १७५-९, २२९,  
 २५१, ३०१-४; छोटा १२५;  
 बड़ा १२४, पार्श्वरत्न  
 १२५, १३०, ३२० ।  
 पार्श्वरत्नी व १२४, १८१ ।  
 पारम दे ३३६ ।  
 पारसनाथ प १६, ६५ ।  
 पारसी वा पारसीक जा ३०, १३४,  
 १८४, १९०, ३०१, ३३६;  
 पारसी बो २४२, २४६; पार  
 सीक ( पारसी-बर्मीष, P'ar-  
 sian ) बो २४६, २५३; पार  
 सी २४७ ।  
 पार्श्वपत्र प ६३-४, ९०-१, १६६,  
 २२१, ३४८ ।  
 पार्श्व दे ३३६ ।  
 पार्श्विन न १३ ।  
 पार्श्विक जा २२४, २३०, २३२,  
 २४० ३३० ।  
 पार्श्वरत्न प ८८ २०० ।  
 पार्श्वरत्न व ३३ - १०० ।  
 पार्श्वरत्न व ३३ ।  
 पार्श्वरत्न जा २२४, २३०, २३२,  
 २४० ३३० ।  
 पार्श्वरत्न व ८८ २०० ।  
 पार्श्वरत्न व ३३ - १०० ।  
 पार्श्वरत्न व ३३ ।  
 पार्श्वरत्न व ३३ ।  
 पार्श्वरत्न व ३३ ।



- ६३, १०३; (६) ६० ।  
 पैशाची जो ११३, १२८, १८२ ।  
 पैशाची बो २४६ ।  
 पोडोवार जि २३३ ।  
 पोन्बुल = तिम्बत ।  
 'पो-ला' जि २२८ ।  
 'पोरस' रा ३६, ५० ।  
 पौरव रा ३१२ ।  
 प्यूठाना जि १५३ ।  
 प्रताप रा ७३ ।  
 प्रतिष्ठान = पैठन ।  
 प्रतिहार जा ७१ ।  
 प्रद्योत, कण्ड, रा ७४ ।  
 प्रभाकरवर्धन रा ६६ ।  
 प्रयाग या प्रयागराज ब ती ३६,  
 ४१, ५४-६, ६०, ७६-७,  
 ६६, ११६, १६९, २०३-५  
 २०७, ३५०, जि २०४,  
 २०७, ती (कनमीर में)  
 १४१ ।  
 प्रयाग महासागर १६१, २५४-५,  
 २७८ ।  
 प्राकृत बो १८५, १६०, २३६,  
 २५०, २६७ ।  
 प्राण्योतिष दे १६६, १७०, १७८,  
 ३१०-१, ३१६ ।  
 प्राग ब ३६, १३७ ।  
 प्राची या प्राण्य देग = पूरण ।  
 प्रोम ब १६७ ।  
 प्रतहगढ़ ब ५५ ।  
 प्रतहपुर-सीकरी ब ६५ ।  
 प्रगाना दे १२७, १७५ ।  
 प्रारूद न १२८, १३४ ।  
 'प्र-ल-ज' ब जि २२६ ।  
 प्रज्ञिक्ता ब ३८, ४०, ८२ ।  
 'प्रानकी' दे १६४ ।  
 प्रारसी बो ६५, १३५, २२५-६,  
 २४७, ३३१-२, ३३८-९ ।  
 प्रारिस दे ८, १०, ४३, १३४,  
 १६२, १८२, १८६, १६३,  
 २२४-५, २५२, ३३६ ।  
 प्रारिम की खाई ३०, १८८-९०,  
 २८१ ।  
 प्रारिवान भा २३, १७६ ।  
 प्रारौर ब ४६ ।  
 प्रारोजकोही = ब्रिम्बाण ।  
 प्रारोजपुर ब ३८-९, ४४, ५१,  
 ५६, ६० ।  
 प्रारु न १५५-६ ।  
 प्रारुबियाँ रियासते २०२ ।  
 प्रारुन जा २६१ ।  
 प्रारुबाद ब १३०, १३२, १७५ ।  
 प्रारुँ सादेमन = मणोजर्द ।  
 प्रारु जा ३१५ ।

पुनः हे २४२ ।  
 सुधी जा को २४३ ।  
 बामन व ४१, ५६-७ ।  
 बलाट जि १५०, २२३ ।  
 बडेपण्ड जि ५६ ६५, ७६,  
 २०५, २०७ २०६ ३२६ ।  
 बडेपण्ड को २०३, २५० ।  
 बांगला को २०६, २१२, २३३,  
 २५०, २६५-६, २६६-७१  
 २७३ ३२५, ३३१, ३३३,  
 ३३५, ३४१ ३५२ ।  
 बलका बर्जिहडा = बर्जिहडा ।  
 बलका हे २२, २६, ३१ ३३-६,  
 ५१ ४१, ५३-४ ३६-८,  
 ६२, ७६ ८१-८ १००  
 १११, ११४, १२० १२५  
 १३१, १३४, १३१, १३३  
 १३६, २०६ २११-२,  
 २१५ २, २३३-४ २३६  
 २७५ २७८ २८१, ३२४  
 ३६०  
 बलका को ११ २५ १३०  
 १६० २०० २ २१  
 २३१ २०१  
 बलका व  
 बलका  
 बलका व १०० २०

बलका व १४१ ।  
 बलका वा बलका जा २५५  
 को २७० ।  
 बलका हे ४६, १२६-७, १०६  
 १६२, १७१ १७२, १८१,  
 २२६, २६६ ३०२ ।  
 बलका जा २२६ ।  
 बलकावामन को १५१, १५३  
 ३१५ ।  
 बलकावामन व ११३, ११८-९, १५१  
 बलका व २७७, १०३ ।  
 बलकाव = बलका ।  
 बलका व १३३-५ २४६  
 बलकावामन व ११३-३, १५० ।  
 बलकावामन = बलका व ।  
 बलकावामनवामन व १३२ ३ ।  
 बलकावामन व १०३ १३०,  
 १३६, ३०६ ।  
 बलका व ४० २०२, १३ २०३,  
 २०५ ।  
 बलका व १३३ १३६, १३७ ।  
 बलकाव जि २०३-५ ।  
 बलका व २६ ११३, ११४,  
 ११५ ११७ १११ २०  
 २१३ २०० १०६  
 बलका व १० २०० १०३



- बरमी बी २१२, २६५, २७०-१, ३२६; जा २५८ २६६ ।  
बरहज व १५४ ।  
बगाद दे ३१, ७४, ७८, ८१, ६२, ६६, १०२ २१३, २४०, २४२, ३४७ ।  
बरुआ जा २६१ ।  
बरेली व ४२ ।  
बसोमील जो १२५, १३० ।  
बलख न १३३, दे ४६ १=७ १३२-३, १६६, १८१, २००, २२४, २२६, २७२, ३०१ ३०३; व दे १३३ ३१२-३ ।  
बेलिया जि २०८ ।  
बलोच जा १३४-५, २२२-३ ।  
बलोचिरानान दे २४, ४६ ६१ १३४-५, १८२ २१७-८ २२१-४ ।  
बलोची बी २२२-३ २४२ ।  
बल्लारी जि २१४ ३४२ ।  
बल्लावर व १४६ ।  
बनगोन न १३७ ।  
बनहर जि १४८ ।  
बमई व ७५, ९८ ।  
बम्बय जि ६२, ६६, २०१ २०३ २११, २१३-४, ३१८ ।  
बम्बी जि २०८ ।  
बइमनी जा १०३-४ ।  
बहादुरशाह रा ७१, ७८ ।  
बहावलपुर जि २१० ।  
बहिगिरि प ११०, १११ ।  
बागद जि २१० ।  
बागमती न १५४-५ ।  
बागलकोट व ८७ ।  
बागलान या बागुल्ल जि ८४ ।  
बागेदवर व १५२ ।  
बांगर जि ३४ ३०, ४४, ४१, २०१, २२१ ।  
बांगल बी २०२-४, २४८ ।  
बाजगाह व १३३ ।  
बाझीर जि १३७-८, २२५ ।  
बाड़ा जा ११२ २१५-६; बी २१५ ।  
बानहाल जो १४२-३ ।  
बाबर रा ४४ ७६ १३४ ।  
बाबुल व दे १८९ ।  
बाबुसर जो १४१, १७७ ।  
बाड़ी जा २७४ ।  
बागिया न व १२७ १३० ३ १८१ ३१३ ।  
बाग जि ३४ ३७ ४४ ४१, ३३० ।  
बागमती जा १४१-३ ।  
बागलचा जो ११३, १४७ ८ ।



'बेगों' = बादा ।

बेद युल = पीत युल ।

बोनिवी डी २५५ ।

बोलाग जो २८, ४८, ५०,

११३, १३५, १८२-३,

२००, २२४ २२७; न

२१८, न २२२-४ ।

बोलीग जि १२०-३, १२६,

१३६, १७२, २६२,

३०० ३०५ ।

बोड जा धमं १२४-५, १७१

१८६ १८१, १८५, १६६,

२६० २६३, ३५० ।

ब्याक न ६७, ६६ ।

ब्याग न ०२, ४३, ४७, १०६,

११० ११३, १४६-८, १६३,

३१०, ३१२, ३४१ ।

बजधारा जो २००-५, २५८

३३४ ३५२ ।

बजधुर न २०९, ४१, ५८,

१०६, ११३-०१, १५२,

१५४-५ १५७-८, १६८

२१२, २३१, २६१ ३०६ ।

बजधुरेन २०३-५ ।

बजधुरेन जि २०३-४ ।

बजधुरेन के २१६ ।

बजधुरेन न १८५ २२० ३ ४५०

२४२, २७६; जो २२२,

२३६, २६८ ।

बादाग जा २७६, ३३२ ।

बादागी न २५ ।

बादाग दे वा ब्रिजिग राम ६२,

७२, ७६ ६६, १३४५,

१६३, १७५, १६२-५, २५०

भजधुर न ४८ ।

भजिधा न ३६, ४०, ४२, ४५,

५१, ६१ ।

भजी जो २१४ ।

भजधुर भजधुर वा भजधुराग

जि १४६-७, २३२ ।

भजधुराग जो २३२ ।

भजधुराग न ४७ ।

भजधुराग न २६ ।

भजधुराग वा भजधुराग २२, २६

७३-५ १०८, १८६, १६६,

२८१ ।

भजेनी न ४८ ।

भजधुराग जा २२० ।

भजधुराग जा ३३२ ।

भजधुराग न जि ४०, ४४, ६७

८१, १५० १८६, १६६,

२००

भजधुराग न ११३ १४७ ।

भजधुराग न ११४ ११६, १४१ ।







३०, ३२ ३ ३०० २७०,  
 ३३३ ।  
 भावविषयिणी ३१ ३१ ।  
 भावव्यय ३० ।  
 भावक का ५३, ६ (विद्यार्थका का)  
 भावना ।  
 भावना ६ ११ १३ ११-६, ३३,  
 ६३ ६३ ६३, ७१ ८, ३८  
 १०० १०६ ११, २११, २५०  
 १६१ १५८ २१३ २८१,  
 ३६३  
 भावनी का २०६ ११  
 भावःकल्प का भावकल्प ३१ ६१  
 ६८ १३३ १३३ १२०  
 ३१० ।  
 भावक वि ६३, १०६-३  
 भावना का १३३  
 भाविकता का ३३-१ ३३, १०१ ५  
 भाव भावना भाव का ३०२ ।  
 भाविकता का ३३ १३३ २०८  
 २१६  
 भाविकता का ११३ ३५० ।  
 भाविक का १०६  
 भाविकता का वि ६६, १०६ ।  
 भाविक का ३३३  
 भाविक का १० १३० १०३  
 भाविक का १०३

भाव भुवना के ५८ २ ।  
 भाविका १५८ ।  
 भाविक का २५१; भाव का भाव  
 भाविक वि ११२, १३३ ।  
 भाविकता का भाविकताविषय ।  
 भाविकता का ११२, ११८ १६१  
 १५३ ।  
 भाविकी का भाविक, ६६ ।  
 भाविक का भाव भाव ५८ ३१, ३१  
 ३३, ३१ १३८ १६१  
 १३३ ५, १०५, २३० ३ ।  
 भाविकता का ३० ।  
 भाविक का १०८ ।  
 भाविकता का वि ३०० ।  
 भाविकता का वि ३० ।  
 भाविकता का भाव १६३ ।  
 भाविकता का भाविकता ।  
 भाविक का ३०३ ।  
 भाविक वि, भाविकी का ३०३ ।  
 भाविक का भाव ।  
 भाविक का ११६, २०८ ३, ३१६  
 ३, ३३३ । भाविकी का  
 ११३ ३ ।  
 भाविक का ६३ १०५ ।  
 भाविक का ६००  
 भाविक का १०६  
 भाविक का १०३









गेयक व त्रि २२१, ३४० ।  
 रोम दे १६२, १६० । रोमन आ  
 १०; बो ३२६ १४८ ।  
 रोमी या रोमक व ३० ४२ ।  
 रोगन त्रि १३० ।  
 राम आ ३१५ ।  
 रोह दे २३० ३१२ । रोहेला जा  
 २३० ।  
 रोहनक त्रि २०२ ।  
 रमो दे १६० ।  
 रकदिव डी ४१० ।  
 रकगर व ४३ ।  
 रकनड व ३९ ४० ।  
 रलीमपुर त्रि २६५ ।  
 रीका डी ०० ६० १८६, ३०६ ।  
 रतलिया व ८८ ९३ ।  
 रंजन व १२५-६, १५०, १६३ ।  
 ररी बोलक बो ११३ ।  
 ररे बो ३३२, ३३६ ।  
 रदाम्य व ११४-९, ११६, १०२,  
 १३०, १४३ ५० १५२ १५३-  
 ५, त्रि ११५ १४० १८६,  
 १५२, १७१, २३०, २६२-  
 ३, ३०४ ३०८ । रदामी  
 बो २६० ।

रमानी बो २१० ।  
 रमगान वा रमगाक त्रि १३७,  
 १८१, ३४१ ।  
 रणिया घुग जो १५३ ।  
 रमोंग बो २७० ।  
 रणितारिय व १७१-३, २३१,  
 २३४-५, २६६, ३००, ३१६ ।  
 ररकर आ १९१ २ ।  
 'रैहदा' वा रैहरोषक रिरिषी ।  
 रंगुलिनी क रतलिया ।  
 रानीनी बो २४२, ३१५ ।  
 राल डोग व ३४३ ।  
 राल मदी १६५, १६७ ।  
 राल सागर १८८-६० ।  
 राम आ २२२ । राम देवा व त्रि  
 १३४, १३६ २१७ २२१-२ ।  
 रामी बो २२२ ।  
 राबुल त्रि १४७-८, २६४ ।  
 राबुली बो २६४ ३०८ ।  
 राहीर व ३६, ४०, ४२ ४४,  
 ४७, ५१, ५४, ६१, ६६ ६८  
 ३३६, त्रि ३३५ ।  
 रजिमपुर त्रि २१४ ।  
 रिच्छति आ २३६ ।  
 रीगुलेय बो १५३ ।





मंहरवर्मा का २३५-६ ।  
 मबर का २५७-८ २७२. २७६.  
 ३०७ ।  
 मनी न ८८. ६२. २०२. ३०७ ।  
 मया हो का २६३ ।  
 मत्ततो न ३१२ ।  
 माहलहीन ३११ ।  
 मान का ६ १६७. २६०-१ ।  
 मानास्ति का १७२ ।  
 मानर का २१२. २५३-८. २६३  
 २७२. २७६-८२. ३०६-७ ।  
 मान के ८. का = मान ।  
 मारदा न = काजी ( कुमाई की ) :  
 दे = करमीर; नी १५१-२; हो  
 २६६-७०. ३३६ = ।  
 मारदी -- मारदातीर्थ ।  
 माहलही का ४८ = ७५. ७६ ।  
 माहपुर कि ४७ २१६ । माहपुरी  
 हो २२० ।  
 माहाबाद कि २०८ ।  
 मिकीक का मिकीक न ११६-७.  
 १०२-३. १३६. १७५ ३०४  
 मिकाहीन व ८८ ६३  
 मिनमन कि १३०  
 मिन न १७३  
 मिन न १२३ १२०  
 मिन न १२३ १२३

शिन्ने का ६० ।  
 शिपही जो ११३. १५०. १७२ ।  
 शिवा जो १३२ ।  
 शिवला व ४२. ११२. १५१ ।  
 शिव = शिवि जा ।  
 शिवनाथ न ८८ ।  
 शिवपुरी प १५४ ।  
 शिवसमुद्रम ती ८६. ६७ ।  
 शिवमागर कि २६३ ।  
 शिवाजी का १०. ८४. ८९. ६६.  
 १०२-७ १७४ ।  
 शिवानक प ११०-१. १४६. १६१ ।  
 शिवि जा के २१८. २२७ ।  
 शिविपुर = शोरकोट ।  
 शीनार प १२६. १३५. २२२-३ ।  
 शुक्तिमनो न ६२ ३१८ ।  
 शुक्तिमान् प ६०-१. २६७. ३१८-  
 २२ ३४८ ।  
 शुंग का ७५ ।  
 शुंग में ५८ ।  
 शुवुटि = सवलज ।  
 शुंग राज जो १११. १२० १८० ।  
 शुंगमन कि २०२. २०४. २०७ ।  
 शुंगमन = मोरारा ।  
 शुंगकोट व १५५ ।  
 शुंग के १६६ ।  
 शुंगमन न का शुंगमन के

४० ४२, ४० ६६, ४१, ४६,  
६२, १२६।

मोचमाल व २०, ३५३।

श्रीपावनम् व ६९।

श्रीसुनाक मा ५०।

शील = शील।

श्रीरघोद व २३, ११ ४१८।

श्रीशिवद म १३५।

श्रीशिवम् व १०५, त्रि २३५।

श्रीशिवनी प्राकृत की २०२, २५८।

श्रीशिव पार व १५८, ३५५।

श्रीशिव व (३) १५०, १३८, १५७

( १ ) १, ४५।

श्रीशिव मा १३५।

श्रीशिव = शिवम्।

श्रीशिव म १३३ ४६१।

श्रीशिव मा २३६।

श्रीशिव व ५८ १५३-८।

श्रीशिव व ३३ ५७ ५८  
६१ ३५०।

श्रीशिव व १३३ ३२०।

श्रीशिव = शिवम्।

श्रीशिव ३३।

श्रीशिव व २०३ २१, २२-३,

३३, ५०-५३ ११० ११२

११५ ११८ १२३ १२६

८, ११०, ११३-३ १२० २०१

२३३-४, २३६, २५४, ३५१।

श्रीशिव व ४१, १५८।

श्रीशिवनी म ११५-६।

श्रीशिव या श्रीशिव मा १३५,  
२५६, २७६।

श्रीशिवपरममा त्रि १३६, २१२,  
२५६, ३५०।

श्रीशिवनी या श्रीशिवनी की २५६।

श्रीशिवनी त्रि १५५, २६५, ३१३।

श्रीशिवनी त्रि १५५।

श्रीशिव व ८५।

श्रीशिव की व १३८-९, २०९।

श्रीशिव त्रि २२५।

श्रीशिव त्रि २३६।

श्रीशिव व या श्रीशिव व १३,  
३५१-२।

श्रीशिव व २२६।

श्रीशिव व १३६।

श्रीशिव म ५८।

श्रीशिव म १३६।

श्रीशिव मा ५०।

श्रीशिव त्रि २०८ ३।

श्रीशिव व ५०।

श्रीशिव व १५०।

श्रीशिव त्रि ११० ११२ १५६।

श्रीशिव त्रि २०३।

श्रीशिव म २१ ३३ १३६,





१८, १०६-१०, ११३, निविम्बान या निवी जि ४२, ११४,  
 ११५-६, १२२-३, १२६, २२३ ।  
 १२६ १३५, १३७-४०, निगमा व १६६ ।  
 १४५, १४७-५०, १४८, निगाही हिद की बी २५०-१ ।  
 १५१ १७३, १८२ १६०, निवीरंवार = धीरंवार ।  
 २१८, २२०-१ २३२-३, निवीरी जि ७५ ।  
 २६०, २६८-६, ३०३-४, निरहर जि १०४, ११६ ।  
 ३१६-२०, ( धार की जामा ) निरिच्छ म ९, १८५ ।  
 ३१३, ३४०, ( वाग्म्याय निरि = निरि ।  
 वाली ) ६५; ३८ २६, ३३- निरुत व ३१६ ।  
 ४ ३४, ४२-३, ५१, ६१ निरुम जि २११ ।  
 ६५, ६६-७७ १०८ १३४ निरुत की २१-४, २६, १६६,  
 १८३- ४, १६३, २००-१, २१०, २१३, २१० २५१,  
 २१७, २१७-८ २२०-३ २२६, २२९, २३४, २४८,  
 २३७, २५० २५३ २६८ २८९, ३०९, ३४८ ।  
 ३३०, ३३२-४, ३४० । निरुकी का २६, बी २१८-९, २५०  
 २००-१, ३००, ३२०-३०,  
 ३८६ ।

निम्ब-द्वयान १ २३१ ।  
 निम्बदाहिनाय जि ११० ।  
 निम्बपारा वाकाय ३३ ३३८,  
 ४०, ४३ ।  
 निम्बी का ३३, १३८, वा ३४  
 ६, २१३, २१३, २२३ ३  
 २३८, २५८, २५९ २६८  
 ६, ३२८, ३३० ५ ३३३,  
 ३३८-१ ।  
 निम्बु व निम्ब व, १ ३०८, ३३  
 ११३, २०५, २२८-१

२२३ ।  
 निगमा व १६६ ।  
 निगाही हिद की बी २५०-१ ।  
 निवीरंवार = धीरंवार ।  
 निवीरी जि ७५ ।  
 निरहर जि १०४, ११६ ।  
 निरिच्छ म ९, १८५ ।  
 निरि = निरि ।  
 निरुत व ३१६ ।  
 निरुम जि २११ ।  
 निरुत की २१-४, २६, १६६,  
 २१०, २१३, २१० २५१,  
 २२६, २२९, २३४, २४८,  
 २८९, ३०९, ३४८ ।  
 निरुकी का २६, बी २१८-९, २५०  
 २००-१, ३००, ३२०-३०,  
 ३८६ ।  
 नीना वा नीलो व ११०, १११-४,  
 ११६, १०५, १०८, १०९-४ ।  
 नीर व १८३ ।  
 नीरिगा व काय ।  
 नीरुत जि १२८, १३४, ०२४ ।  
 नीरुतकी व ११८ १२० ।  
 नीरुत जि १०३ ११८ ११३-४ ।  
 नीरुत का ( ) व ११३-४ ।  
 नीरुत व ११० ११०

सुनवार को ३०६ ।  
 सुनाभ रा ३११ ।  
 सुनसिरी न ११४ २५८ ।  
 सुबाधु व २३३ ।  
 सुनाथा द्वी २५४ ।  
 सुन्द द्वि ( ५ ) = २, ३१९: ( ३ )  
 ३११, ३१३, ३१६ ।  
 सुष्य का २३, १५९ ।  
 सुरमा न = ४१, ५८, १२१,  
 १६५, १६८, २१२-३, २६०,  
 २६५ ।  
 सुराष्ट्र=वासिवाठ ।  
 सुगांध न १३१-२ ।  
 सुतेमान प ( ५ ) १२६, १३५,  
 २२०, २२२-४, २२६, ३१८=  
 २१: ( ५ ) ३२० ।  
 सुतेमानसिकोह साहजारा १७४ ।  
 सुवर्णदीप २५५, २५८, । सुवर्ण-  
 द्वीपी जा को २५४ ।  
 सुवर्णभूमि हे १६५, १६७, १८६-८०  
 २५८, २६१, ३०७ ।  
 सुवर्णोत्तम न २६, = ३, ६३ ।  
 सुवाम्नु = स्यात ।  
 सुवोमा = मोहक ।  
 सुवर्णनद व ५३ ।  
 सुत व २० २६ ६६ १००  
 = १ ।

सेतुबन्ध द्वी ६१ ।  
 सेतुमन्त = हेनमन्त ।  
 सेन जा राज्य = २, १०८, २१६ ।  
 सेनादिन्दु रा ३११ ।  
 सेनांग जा २५५ ।  
 सेनम जि २१४ ।  
 सेनान न १३३ ।  
 सेन कोई = लाल नदी ।  
 सेन न २२, ५५, ६३-५, ७७,  
 ७६, = ०-१ २४१ ।  
 सेनारा व ७४-५, ६६ ।  
 सेननाथ ती व ४३, ६६ ७०,  
 = ६, २१५ ।  
 सेनको जा ७१ ।  
 सेनको, मृत्याज रा ७१: इमरा  
 ७०, २७४ ।  
 सेनासिगी प ११०, १४६ ।  
 सेहन न ३३ ।  
 सेवीर हे ३७, ६६, २२१ ।  
 'सद्य' व ६३ ।  
 सद्य व १३६ ।  
 सेनाज हे १७१, ३१६-८ ।  
 सिरी का सेनो न ११३, ११५,  
 १४८, १५०, १५३ ।  
 सेन हे = ६, = ४२ ।  
 सेनाहे १२१, १६५ १६७ २६०-  
 १, २७० ।



२४४-५. २७७ ।

दिल्ली बी ११. १६. २०२. २२०.

२३२. २३३= २४३. २५७

२५६. २६०-१, २७१.

२२४= ३३०-१. ३३३=.

३४०-६, ३५२; पार्थी ३०.

३२५, ३२७. पार्थी २०४.

२६३. ३२५-७, ३३४-५ ।

दिल्ली-गवट २०१-११. २३३-

४. २३७= २६६ ।

दिल्ली-गवट बी ३२४ ।

दिल्ली जा ३. १३६. २०२.

२२०. २६१. २७४. २८६-

६०, ३३२. ३३६ ।

दिल्ली-गवट व १३, १०६. ११०-६

१२३-५, १२७. १२६-३०,

१३७. १७६-७. १=१.

१=३, १६=, २२४. २४७,

२५२, ३०६, ३१६-२०,

३४= ।

दिल्ली-गवट व ६१, १=२-३ ।

दिल्ली-गवट वा हिमालय व १३, १६.

२५. २७ ३२, ३६-६.

४४-५. ४७ ४६ ५१-२

५= =६ ६७ १०९-१२१,

१२६ १३०. १३६-५=

१६० ३ १६= १७०

१=६, १६= २४६. २५१.

२५३-४ २५= २६०

२६२-५ २६७, २८०, २८६

३०४-६ ३०६ ३४=,

३५०; पार्थी गवट १०९-

११, १४५. १७३. ३११:

पार्थी १०६-११. १४५

३१०-१; गवट १०६-१०,

११२-५ ११= १४०-२.

१४५-५१ १५५-७, ३११ ।

दिल्ली-गवट = १५ ।

दिल्ली-गवट जि ३४ २०२, २४१ ।

दिल्ली-गवट जि २१ ।

दिल्ली-गवट व ११६-७, १२२-३. १२५

१३९, १७५, १७७ २४५:

व २३१, २४५ ।

दिल्ली-गवट व २७, १०५ ।

दिल्ली-गवट जि ११२, १५३ ।

दिल्ली-गवट ग ५०, ५७, ७०, ७६, ७= ।

दिल्ली-गवट पुर जि १४६, २३३ ।

दिल्ली-गवट जा १=५, २४७ २७२,

२७=, २८०-१ ३०१

३१५ ।

दिल्ली-गवट = ४१ ।

दिल्ली-गवट जा २५६ ।

दिल्ली-गवट व ३१५ ।

देगण व १२७८, १३४ १८१,	ईशर व १३३, १८१ ।
-३ १८५, ३०५, ति	ईशर ता २०६ ।
२२५ ५ ।	डो ता वो २५६ ।
इममरु व १२८-६ १३६, १८३	हाभाफ हा ल ३०, २६० ।
३१६-२० ।	होरोनकल व ८६ ।
ईक ता वा २५३ ।	होमुं १५ हा १६२ ।
ईलर = लुणव ।	होपहर वा ५५ ।
ईर, मितां, हा ५०, १७३ ।	होमिपारपुर = हुमिपारपुर ।
ईरलवान व (अ) ५०, वे (ब)	होमूर व २१४ ।
८६, १०१ २१५ ३२१ ।	

## छपाई की भूलचूक

पंक्ति	भगुद	गुद
१५	२७	१२
[२१ २५]	पंक्ति २ को पंक्ति ५ के रूप में पढ़िये।	
३	२२	अनु
११	१७	की
२२	२५	वदेश
२५	२३, २४	छुतुद
२६	१०	देता है उस...। जिस देता है। उस...जिस
२६	२	के— के।
२६	११	पूर्ण के विकास पूर्णकेनिकाम
२७	१२	मार्करटेय मार्करटेय
२६	१०	बिचला वह बिचला
३०	१५	निश्चित...है, कि निश्चित...है कि
३०	२१	उच्चारण...। व मराठी उस उच्चारण...। मराठी
३१	४	तार्थ तार्थ
३१	११	४, ४७
३१	२०	मधुवनी मधुवना के
३१	२६	दोष विकास दोष विकास
३२	२५	
३२	१४	लम्बाई लम्बाई—
४७	१७	थे। थे।
६३	७	गवाल गवाल
६३	१३	( दशाणा ( दशाणा
६५	११	तक तक।
६५	२३	का मिला को मिला

शुद्ध	पंक्ति	भङ्ग	शुद्ध
७७	११	तावर	तीवर
८७	८	हुगली	हुवली
८३	१७	पैरणार, नदी	पैरणार नदी
१२८	१	का	की
१८३	११	मन	मनी
२२८	८	जाते	जाते
२२६	२०	फ-ल-न,	फ-ल-न
२७२	२७	'४२५	२४'२५
२७२	२८	५३	'५३
३५१	१	का	को
३५५	१०	सुधारक	सुधारक
३५५	११	किन्द, =६१ ।	दि, १८६ ।
३५६	१४	३१३	३१०-३
३५६	२२	१३६	३१०
३५६	२३	३१०	१३६
३५७	१५	२३१	२३०-१
३६०	२५	३१०-१	३१०-१५
३६३	६	१४१	११





( ४ )

उन्हीं विरलों ... में हैं । ... भारतीय इतिहास-विज्ञान के सम्बन्ध में न तो हिन्दी में और न अंग्रेजी में ही अभी तक ऐसा ग्रन्थ प्रकाशित हुआ ... । एक के बाद एक ऐतिहासिक घटना भौगोलिक रज्जु से आकर्षित हो कर आप के सामने से गुजरती चली जायगी । भारत के भूगोल का इतना अच्छा ऐतिहासिक अध्ययन अभी तक ... और किसी ने नहीं किया । ... भूगोलेतिहास के अध्ययन की एक नवीन दिशा सुझाई है । ... भौगोलिक परिस्थितियों के ऐतिहासिक घटनाओं पर प्रभावों को जिस सुन्दर ढंग से वर्णन करते हैं वह पढ़ते ही बनता है । ... लेखक ने स्थान स्थान पर अपनी तर्कशक्ति का कितना अच्छा परिचय दिया है । विश्वविद्यालयों और कालेजों के विद्यार्थी इस पुस्तक को अवश्य पढ़ें ।

—प्रताप, १३ जुलाई १९२५ ।

originality of thought and clearness of views ( विचार की मौलिकता और विशदता ... ) ।

—वैदिक मैगजीन फरवरी १९२७ ।

विचारशील लेखक की गाढ़ी मेहनत और गहरे विचार का छाप ... । ... मौलिक विचारों की एक नई परम्परा ... । भारतीय इतिहास ... के साहित्य में एक बिलकुल नई चीज ... । पिछले डेढ़ सौ वर्षों में ... किसी ने अभी तक भारतीय इतिहास की भौगोलिक भित्ति का शृंखलाबद्ध अनुशीलन नहीं किया था । ... माया अपने ढंग की रोचक और सजीव है ।

—सरस्वती, सितम्बर १९२६ ।



utilized the researches by various scholars up to date, and has added his own contribution which are important. Such a synthetic work had not been attempted before. The book is in Hindi. This will stand in the way of the author's results reaching foreign scholars.

The learned author's method is perfectly correct, and his judgement logical.

The work deserves to be translated into English.

Patna 21 July 1931 K. P. Jaiswal

( मैंने श्रीयुन जयचन्द्र विद्यालंकार की भारतीय इतिहास की रूपरेखा ( प्राचीन काल ) को पूरी तरह देखा भासा है। यह एक अद्वितीय कृति है। वैदिक काल में लेकर गुप्त युग के अन्त तक भारतीय इतिहास की राजनैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक-विवेक, सभी पहलुओं में विवेचना की गई है। लेखक ने विभिन्न विद्वानों की अनेक-अनेक की शोधों का उपयोग किया है। और इनमें अपनी नई शोधों, जो महत्वपूर्ण हैं, जोड़ी हैं। इस प्रकार का समन्वयपूर्ण ग्रन्थ लिखने की अनेक दिग्गजों ने चेष्टा नहीं की। पुस्तक हिन्दी में है। इस कारण संस्कृत के परित्याग विदेशी विद्वानों तक पहुँचने में बाधा होगी।

विद्वान लेखक की शैली पूरी तरह आशोचनयोग्य है। और विचारप्रवृत्ति महामंगल।

इस ग्रन्थ का अंग्रेजी अनुवाद होना चाहिए।

सदर, ३१ जुलाई १९३१। (दा० प्र० ज्ञानमयान।)

